तक्षशिला

काव्य

बाबू रामचन्द्र वर्मा की सम्मति

प्रियवर,

.. मै आपके काव्य को आद्योपान्त देख चुका हूँ। इसमें बनावट की कोई बात नहीं है। मुझे तो आपकी यह कृति बहुत ही सुन्दर और सुखद प्रतीत हुई। . इस परिश्रम के लिए धन्यवाद।

पण्डित उदयशकरजी ने अपने तक्षशिला काव्य के कुछ भाग मुझे सुनाये और काव्य में कौन कौन विषय रक्खे गये है, इसे सक्षेप में बताया। काव्य सुन् कर मुझे आनन्द हुआ। भाषा सुथरी और गठित है और शब्दों में माधुर्य्य है। कई अंश बहुत हृदयग्राही और करुणोत्पादक हैं। तक्षशिला का महत्त्व आज साधारण लोग बहुत कम जानते हैं। मुझे विश्वास है, इस काव्य के द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन सस्कृति के इस प्रसिद्ध केन्द्र की ख्याति जनता में फैल जायगी।

लाहौर
अधिक आषाढ़ बदी ३०–१९८८

पुरुषोत्तमदास टंडन

गवर्मेन्ट कालिज
लाहौर ४–८–३१

मैंने पं० उदयशकरजी भट्ट की लिखी तक्षशिला के कई स्थल पढ़वा कर सुने। प्रसाद, ओज, गाम्भीर्य और शब्दौचिती आदि जो जो गुण अच्छे काव्य में होने चाहिए प्राय. इस काव्य में मौजूद हैं। ऐतिहासिक उल्लेख चतुरता से किये गये हैं। रचना सरस और वर्णनशैली

हृदयग्राही है। आशा है कि यह काव्य छात्रो और पाठको के लिए उपयोगी प्रमाणित होगा और देश की ओर भक्ति और प्रेम उनके दिलो में उत्पन्न करेगा।

गुलबहारसिंह, एम० ए०, एल-एल० बी०
प्रोफेसर

I have gone through the 'Taksa-Sılā-kāvya' written by Pt. Udaya Shankar Bhatt. I am very glad to see that he has employed his poetic genius in describing one of the most glorious and interesting subjects of ancient Indian history. I congratulate him for having produced an inspiring work. The language throughout is chaste and in keeping with the theme. The author has not departed from known facts of history, at least in material particulars. I hope the work will be appreciated by the Hindi world as being of real service to our modern literature. I am sure the author will devote his energies to other subjects of our great and ancient culture.

4 COURT STREET
Lahore, July 25, 1931

VEDA VYASA
M.A., LL.B.
Formerly professor of Sanskrit literature
Punjab University, Lahore

भूमिका

सन् १९२९ के मार्च मास में "पंजाब ज्यौग्रेफिकल एसोसियेशन" के एक सदस्य की हैसियत से मुझे तक्षशिला देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तीन चार मील दूर तक फैली हुई तक्षशिला की घाटी में मुझे भारतीय महत्त्व की गहरी झलक मिली। तक्षशिला के सम्बन्ध में कुछ कुछ साहित्य मैं पढ़ ही चुका था. उस समय उसे देखते ही मैं तो उद्भ्रान्त-सा हो उठा। उसके एक एक भग्न में मुझे भारत की आत्मा झलकती दीखी। एक एक खण्डहर मानों कोई पुराना किन्तु अस्पष्ट तथा करुणा-भरा गीत गा रहा था। एक एक स्तूप में, एक एक भग्न मूर्ति में करुणा की सूक्ष्म लहर उठ रही थी। पार्टी के लोग देखते देखते दूर पहुँच जाते तो मुझे जागृति-सी होती और मैं कठिनाई से उन्हें पकड़ पाता। तक्षशिला के दर्शन से मुझे कितना आनन्द, कितना औत्सुक्य, कितना विषाद हुआ उसका यह जड लेखनी वर्णन नहीं कर सकती। दिन भर देखने और एक एक जगह देखने के बाद तो मैं इतना तन्मय हो गया कि मुझे अपनी सुध-बुध भी न रही। रात को मेरे सामने वे ही खण्डहर, वे ही मूर्तियाँ झूमती-सी दिखाई देतीं। इतनी तन्मयता, इतनी तल्लीनता मुझे अपने जीवन में कभी नहीं हुई। तक्षशिला के खण्डहरो की कथा कहते हुए मेरी वाणी में पाटव आ जाता। सप्ताहो के बाद भी मुझे तक्षशिला के खण्डहर अपनी दर्द-भरी कहानी सुनाते मालूम पडते। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ मानो तक्षशिला के खण्डहर आज भी अपनी वैभव-कहानी

याद करके तथा अपनी हीनावस्था पर दुखी होकर ज़मीन में गड गये है। खोद से निकले हुए नगरों के भाग अपने वैभव की बाते दिन में सूर्य देव और निस्तब्ध निशीथ में तारे और चद्रमा से पूछा करते है। भारत की इस प्राचीन संस्कृति के केन्द्र तक्षशिला की इन मूर्तियो को देखकर मेरे हृदय में जो गुदगुदी हुई, जो तूफान उठा, जो हर्ष, विषाद का द्वन्द्व युद्ध हुआ, वैसी उत्कटता का अनुभव मैंने बहुत ही कम किया है। क्या फिर कभी तक्षशिला अपना पुराना वैभव देख सकेगी, वह फिर यौवन में पनपकर अपना षोडश शृंगार कर सकेगी? क्या वह फिर अपने वैभव से भारत का मस्तक ऊँचा कर सकेगी? यही विचार रह रह कर उठते थे। दो शब्दो में कह दूँ, कि कई मास तक मुझे तक्षशिला का बुख़ार चढ़ा रहा। कुछ तुकबन्दी तो कर ही लेता हूँ सोचा कि लाओ दस पाँच पद्य लिखने से हृदय का बुख़ार निकल जायगा। परन्तु कहाँ, वह ऐसी वैसी बीमारी तो थी नहीं जो दो चार पद्यो से छुटकारा दे देती! 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यो ज्यो दवा की'। सन्तोष नहीं हुआ। लाइब्रेरी से सर जान मार्शल की, Guide to Taxila, लेकर पढ़ी। एक बार नहीं कई बार। इच्छा और उत्कट होती गई। तदुपरान्त तक्षशिला की 'खोद' पर निकलनेवाली आर्क्योलोजिकल रिपोर्ट की सारी फाइले पढीं। अब तो उत्सुकता बेचैनी की शकल में बदल गई; और लगातार बौद्ध, जैन तथा आर्य-साहित्य के ग्रंथो का अध्ययन किया। अँगरेज़ी के ग्रथो से अभिलाषारूपी तृषा की परितृप्ति की, परन्तु उन ग्रंथो के द्वारा जमे हुए विचार और भी ज़ोर से हृदय में उबलने लगे। फलतः वे दस पाँच पद्य धारावाहिक रूप से आगे बढ़ने लगे। उन्हीं विचारों का निदर्शन यह 'काव्य' आपके सामने प्रस्तुत है।

वर्णन-क्रम

इस काव्य के प्रथम स्तर में 'पंजाब-प्रशस्ति' तक्षशिला की भूमिका है। इसके अनन्तर नगर का भूगोल, उसकी स्थापना, उसकी बनावट

तथा उसका वैभव वर्णित है। द्वितीय स्तर में महाराज भरत चक्री के छोटे भाई महाराज वाहुबली का राज्य-वर्णन तथा अद्‌भुत वीरता और एकान्त साधुता के कारण महत्त्वाकाक्षी भरत के प्रति उपेक्षा भाव के कारण चक्री का नाराज होकर तक्षशिला पर आक्रमण, दोनो भाइयो का परस्पर द्वन्द्व युद्ध यही तक्षशिला के द्वितीय और तृतीय स्तर का सार है। चतुर्थ स्तर में ग्रीक राजा आम्भी का राज्य, अलक्षेन्द्र का आक्रमण, पौरुष (पोरस) के साथ युद्ध, चंद्रगुप्त का नंदवंश-द्वारा निर्वासित होकर तक्षशिला की ओर प्रस्थान, आम्भी को पद-दलित करके मौर्यसाम्राज्य की स्थापना, अपने प्रतिनिधि-द्वारा उत्तरापथ राजधानी तक्षशिला का शासन, तदुपरान्त विन्दुसार के राज्यारोहण करते ही तक्षशिला में विप्लव होना इधर आचार्य चाणक्य के परामर्श-द्वारा वडे कुमार 'सुषिम' का तक्षशिला-प्रस्थान, तक्षशिला की विप्लव-शान्ति, शासन-सुधार तथा तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने पर सुषिम का राज्य से उपरत होना, फिर विदेशी राष्ट्रो की सहायता से नगर का विद्रोह कर वैठना तथा सुषिम का हारकर मगध को लौटना आदि कथाएँ है। पचम स्तर में अशोक का शासन, नगर-व्यवस्था, प्राचीन तक्षशिला युनिवर्सिटी का पुनरुद्धार आदि कथाएँ है। षष्ठ स्तर में अशोक का राज्य-विस्तार, वौद्ध-धर्म-दीक्षा, कुणाल का तक्षशिला-शासन, उसकी राज्य-व्यवस्था, तिष्यरक्षिता-द्वारा कुणाल का निर्वासित और अन्धे होकर अपनी स्त्री काञ्चनमाला के साथ गिरि, नदी, कानन, जनपदो में घूमना, मगध-राज्य में जाकर पिता से मिलना, अशोक का न्याय और कुणाल के पुत्र सम्प्रति का तक्षशिला का शासक बनाया जाना आदि कथाएँ हैं।

इसके वाद परिशिष्ट स्तर में ग्रीक, कुशान, पार्थियन, हूण राजाओ के आक्रमण, तक्षशिला का ध्वस लिखा गया है। उपसहार में तक्षशिला-वैभव तथा इसका पतन वर्णित है। यही इस काव्य की कथा है। द्वितीय और तृतीय स्तर में जैन-ग्रन्थो से कथा ली गई है। वाक़ी सव

कथानक इतिहास-बद्ध है। शेष कथानको का संग्रह बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों के आधार पर है।

विदेशी साहित्य और तक्षशिला

'तक्षशिला' नामक इस काव्य के लिखे जाने का कारण प्राचीन एशियाई तथा भारत की प्राचीन संस्कृति की महत्ता दिखाना ही है। तक्षशिला विदेशो के भारत-सम्बन्ध का द्वार है। कदाचित् प्राचीन भारत का यह बड़े से बडा शहर रहा होगा। ग्रीक देश के इतिहास में तक्षशिला का कई बार उल्लेख आया है। प्राचीन[1] क्सेरसीज xeres तक्षशिला से भारतीयो की एक टुकड़ी ले गया था। इसकी सहायता से इसने यूनान पर आक्रमण करके उसे जीता। उसने स्वयं अपनी यात्रा में तक्षशिला के वैभव का वर्णन किया है। शैलाक्ष (स्काईलेक्स) ने प्रसिद्ध ग्रीक सम्राट् डेरियस की आज्ञा से सिन्ध नदी तक समुद्र-द्वारा यात्रा की थी, उस समय डेरियस की इच्छा भारत पर शासन करने की थी। शैलाक्ष तथा हेकेटियस ने अपने देश-वर्णनो में भारत के नगरो का विशेष उल्लेख किया है। उसमें तक्षशिला को प्रधानता दी गई है।[2] इसके अतिरिक्त एक और ग्रीक लेखक ने भारत और तक्षशिला के प्रान्त की समृद्धि का वर्णन किया है—इसका नाम है क्लिटार्कस, यह सिकन्दर का समकालीन

---

[1] देखो V A.Smith की Ancient and Hindu India p 45.

[2] The Province on the Indus annexed by Darius was formed into the twentieth satrapy, which was considered to be the richest and most populous province of the Persian Empire . . The Indian satrapy, which was distinct from (Aria Herat) Arachosia (Kandhar), and Gandharia (Taxila and the North-Western Frontier) must have extended from the Salt Range to the sea and probably included the part of the Punjab to the east of the Indus—*V A.Smith Ancient and Hindu India, p* 45

था। स्ट्रेबो नामक एक प्राचीन लेखक ने भी तक्षशिला का उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त प्लिनी नामक एक विद्वान् लेखक ने तक्षशिला के द्वारा भारत के व्यापार-सम्बन्ध में खोज-पूर्ण विचार प्रकट किये हैं। और भी बहुत-से ऐसे ग्रीक इतिहास-लेखक हैं जिन्होंने भारत तथा तक्षशिला पर अपने विचार प्रकट किये है उनमें :—

१—पोम्पोनियस मेला

२—सोलिनस

३—क्लीडियस एलिनस

४—मार्सियेनस आदि ग्रन्थकार मुख्य है। इन लेखको के ग्रन्थो से तक्षशिला की (अर्वाचीन बौद्ध-काल के बाद की) विभूति पर काफी प्रकाश पड़ता है। तथा विदेशियों का तक्षशिला के सम्बन्ध में कितना ज्ञान था, इसका विस्तृत ज्ञान होता है। तक्षशिला किन्हीं दिनो भारत-व्यापार का केन्द्र थी। पिछले दिनों श्रीयुत कनिंघम साहब तथा सर-जान मार्शल ने तक्षशिला के सम्बन्ध में बड़ी खोज की है। तथा प्राचीन सिक्के, शिलालेख, भूषण, बर्तन और कारीगरी के द्वारा सारे ही तक्ष-शिला के राज्यों का पता लगाया है। वह काम अब भी बराबर चल रहा है। तक्षशिला के सम्बन्ध में इन महानुभावों ने जो प्रशंसनीय कार्य किया है उसके लिए ये सज्जन भारतीयों की तरफ से अत्यन्त धन्यवाद के पात्र हैं।

भारतीय साहित्य और तक्षशिला

तक्षशिला के सम्बन्ध में विदेशी लोगो की सम्मति का अत्यन्त सक्षिप्त निदर्शन हो चुका, अब देखना यह है कि भारतीय साहित्य इस विषय में क्या कहता है। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि भरत ने केकय देश के राजा युधाजित् के कहने से उस प्रदेश को जीता और अपने पुत्र तक्ष को उस देश का स्वामी बनाया। सम्भवत इसी कथा

के आधार पर नागवंश की उत्पत्ति हुई। तक्ष और नाग पर्यायवाची शब्द है। तक्ष का नाम ही तक्षक पड गया होगा। महाभारत में भी तक्षक एक राजा था, जिसने अर्जुन के पौत्र परीक्षित को काटा था। कदाचित् काटने का आशय उसके घर में छिपकर परीक्षित को मारने का ही होगा। जिसका बदला परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने सर्पसत्र-द्वारा लिया। महाभारत के एक स्थान में ऐसा भी मालूम होता है कि तक्षक का वैर पाण्डवो के साथ पुराना था। जिस समय अर्जुन ने खाण्डव वन दाह किया, उस समय वह वन तक्षक के अधिकार में था। अर्जुन ने अपने भुज-बल के दर्प से तक्षक को मार कर उस वन में नगर बनाने के लिए खाण्डव वन दाह ठीक समझा होगा। यही कारण है खाण्डव वन दाह का बदला तक्षक ने परीक्षित से लिया।

यह तक्षक कदाचित् भरत-पुत्र तक्ष का ही वंशधर होगा। तथा खाण्डव वन दाह के बाद वह अवसर की प्रतीक्षा में अर्जुन की दृष्टि से ओझल होकर पुरानी राजधानी तक्षशिला चला गया होगा। इस तरह वाल्मीकि रामायण और महाभारत में तक्षशिला का इतिहास परस्पर सम्बद्ध होता है।

तदनन्तर जैन-ग्रन्थो में तक्षशिला का विस्तृत वर्णन है।

अवसायक निरुक्ति (हरिभद्र सूरिकृत) ग्रन्थ में भगवान् महावीर का पार्षदो के साथ गमन, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में बाहुबली का राज्य तथा भरत का युद्ध मिलता है तथा विधि पक्ष, प्रभावक चरित्र, दर्शन रत्न रत्नाकर, हरि सौभाग्य, शत्रुञ्जय माहात्म्य आदि पुस्तकों में तक्षशिला का विविध प्रसंगो में वर्णन है।

बौद्ध-ग्रन्थो में महावग्ग, दिव्यावदान कल्पलता, दीपवंश, धम्म पदात्थ कथा, अवदान कल्पलता जातक आदि ग्रन्थो में तक्षशिला की कथाएँ हैं। जो यथास्थान सहायकरूप से इस पुस्तक की आधार बनी हैं।

काव्यो में रघुवश में भी तक्षशिला का वर्णन है। बृहत्सहिता तथा कथासरित्सागर में एकाध जगह तक्षशिला की कथाएँ है।

मैंने पुस्तकस्थ कथाभागो को उपर्युक्त पुस्तको से लेकर काट छाँट करके अपने मतलव का वना कर लिखा है। तथा जहाँ इन ग्रन्थो के उद्धरणों की आवश्यकता समझी है वहीं कथाभाग में वे उद्धरण दे दिये हैं।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह कहना कठिन है कि पुस्तक के सारे ही कथाभाग इतिहास-सिद्ध है। कविता की दृष्टि से जो मुझे उचित जान पडा उसी के अनुसार कथा को मैंने लिखने का प्रयास किया है। वर्णन-प्रसगो में, वात-चीत में, विचार-शृंखला को मुख्यता दी गई है। फिर भी पुस्तक का ऐतिहासिक रूप विगडने नहीं पाया है, ऐसी मेरी स्पष्ट धारणा है। इसके अतिरिक्त वहुत-से विद्वान् बौद्ध और जैन-ग्रन्थो के इन प्रकरणो को इतिहास सिद्ध नहीं मानते। उदाहरणार्थ कुणाल-स्तूप के विषय में ऐतिहासिको में मतभेद है, उनके विचार से तक्षशिला का कुणाल-स्तूप वास्तविक कुणाल का स्तूप नहीं है। इसी तरह वाहुवली की कथा कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं रखती। परन्तु मै इनको ऐतिहासिक ही मानता हूँ। उसका कारण यह है कि जैन-ग्रन्थो में त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र ग्रन्थ जहाँ धार्मिक आधार पर लिखा गया है वहाँ उसमें जैन-साहित्य का इतिहास भी सम्मिलित है। इसी के आधार पर जैन-इतिहास की सृष्टि हुई है। तथा कुणाल का स्तूप अवश्य ऐतिहासिक है। प्राय सारे ही बौद्ध-ग्रन्थो में कुणाल का निर्वासन और अन्धा होना पाया जाता है इस बात को आज-कल के विद्वान् ऐतिहासिक मानते है फिर कुणाल-स्तूप भी अवश्य तक्षशिला में वना होगा। यह दूसरी बात है कि यह स्तूप (जो आज-कल प्रचलित है) कुणाल का न हो। मैं भी तो उसी स्तूप को कुणाल-स्तूप नहीं कहता। साराश यह है कि पुस्तक को उपादेय बनाने की दृष्टि से मैंने कथाभागों को ऐतिहासिक मान कर ही लिया है।

तक्षशिला की खोज

तक्षशिला की घाटी में आज-कल तीन नगरों के भग्नावशेष मिलते हैं, भीरुमन्द, सिरकप और सिरसुख। सर जान मार्शल ने 'आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट' में भीरुमन्द को प्राचीन नगर बताया है। इसी में मौर्यवंश ने राजधानी बनाई। सिरकप की स्थापना हिन्दू ग्रीक राजाओ ने की, यह राजधानी कुशानवंश तक रही; इसके बाद कनिष्क ने पेशावर को अपनी राजधानी बनाया। सिरकप नाम के सम्बन्ध में कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं मिलता, परन्तु किंवदन्ती यह है कि सिरकप एक राजा था, उसे शतरंज खेलने का बडा शौक था। जो कोई शतरंज में उससे हार जाता, राजा उसका सिर काट डालता था। बहुत दिनों तक उसका यह कार्य चलता रहा। कहा जाता है कि उसके पास एक चूहा था जो खेलते खेलते दूसरे के मौहरो को इधर-उधर कर देता था, इससे प्रतिद्वन्द्वी बाजी हार जाता। रिसालू नामक एक सरदार ने उसकी यह चाल समझ ली और एक बहुत छोटे क़द की बिल्ली पाली तथा सिरकप के पास शतरंज खेलने गया। जैसे ही सिरकप का चूहा मौहरे इधर-उधर करने निकला, वैसे ही रिसालू की बिल्ली आस्तीन से निकल कर उस पर झपटी। चूहा डर कर भाग गया। रिसालू बाजी जीत गया। कहते हैं उसी सिरकप ने इस नगर की स्थापना की। इस कहानी में कहाँ तक ऐतिहासिक तत्त्व है इसका निर्णय करना कठिन है। उस प्रदेश के लोग आज-कल भी रिसालू और सिरकप की कहानी बड़े चाव से कहते हैं। जो हो इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि सिरकप एक राजा था, परन्तु उसने ही सिरकप की स्थापना की होगी, यह बात सदिग्ध है। वैसे तो 'सिरकप' शब्द पंजाबी का मालूम होता है। इसका अर्थ है सिर काटना। कदाचित् इसी आधार पर सिरकप नामक राजा की कल्पना की गई है ऐसा ज्ञात होता है।

सिरसुख के विषय में सर जान मार्शल का विचार है कि इसे नगर के खोदने पर कनिष्क की मुद्राएँ निकली है फलतः यह नगर कनिष्क ने बनाया होगा।

स्तूप

साधारणतया तक्षशिला में बहुत-से स्तूप है, उनमें प्रसिद्ध तीन स्तूप हैं। वाह्लार स्तूप—यह अशोक ने बनवाया था। बौद्ध-ग्रन्थो में लिखा है कि इस स्थान पर तथागत ने अपने सिर की बलि दी थी। यह तक्षशिला के उत्तर में हारोनद से १०० फुट की ऊँचाई पर है। इस जगह दैवी पुष्पों की वृष्टि होती थी। पर्व के दिनो में इस स्थान पर मेला लगता था। दूर दूर से रोगी रोग-मुक्ति के लिए आते थे।

कुणाल-स्तूप

यह शहर के बाहर दक्षिण-पूर्व में पहाडी की ओर १०० फुट ऊँचा है। कहा जाता है इसी स्थान पर कुणाल को अन्धा किया गया था। परन्तु ऐतिहासिक विद्वान् इस बात को नहीं मानते।

धर्मराज का स्तूप

यह हारोनद से लगभग ७० गज ऊँचा है। यह स्तूप तक्षशिला में सबसे बडा स्तूप हैं। इसके चारो ओर गान्धार देश के नमूने की मूर्तियाँ है, उनमें कुछ माला पहने हुए हैं। एक स्थान पर भगवान् बुद्ध की बहुत बडी मूर्ति है, जिसके पैर ही पैर बाक़ी है शेष भाग काट डाला गया है। कुछ तो इस स्थान पर बोधिसत्व की मूर्तियाँ हैं और कुछ छत्रधारिणी शाक्य मूर्तियाँ। प्रायः सब मूर्तियाँ ही अभय मुद्रा से मुद्रित हैं। आसेज (अर्जित यश) राज्य के शिलालेख इसी स्तूप में पाये गये है। इसी प्रकार स्थान स्थान पर मन्दिर तथा देवमूर्तियाँ है, जो प्रायः आक्रमणकारी राजाओं ने अपने राज्य-काल में बनवाई थीं।

रहा है। भारतीय संस्कृति तथा अन्य एशियाई संस्कृति के इस केन्द्र में भारत के अन्य नगरो की अपेक्षा सभ्यता का अधिक सघर्ष रहा है। इसी लिए तक्षशिला-काव्य का मुख्य रूप देकर लिखने का कष्ट-साध्य लोभ मैं सवरण न कर सका।

प्रस्तुत पुस्तक के विषय में मेरा विचार है कि ऐसे काव्य के लिए आज-कल के प्रचलित छायावाद और रहस्यवाद मय शब्दाडम्बर के वन में और जमीन आसमान के कुलावे मिलानेवाली भाव गाम्भीर्य की दुरूह झडी में सुबोधगम्य कोई भी धारावाहिक पद्य-रचना नहीं हो सकती। मुक्तक के कलेवर को ही रहस्यवाद अपना सका है। इस प्रकार की कविता केवल सहृदय परिश्रम सवेद्य है। इसी लिए प्राचीन छन्दो की पोशाक में और साधारण गम्य विषय वर्णन-द्वारा इस काव्य का प्रणयन हुआ है। मैं यह नहीं मानता कि मेरे वर्णन में नवीनता है तथा भाव-प्राञ्जलता के ऊँचे शिखर पर मैं पहुँच गया हूँ, और जो कुछ है वह मेरा अपना ही है। इस प्रकार का दावा तो कदाचित् वडे से वडा कवि भी नहीं कर सकता, फिर मेरी तो गिनती ही क्या? परन्तु इतना कहने का साहस अवश्य है कि वर्णन-शैली मेरी अपनी ही है। साथ ही विषया-नुसारी वर्णन में मैंने वृत्तियो को उसी स्वरूप में रखा है। छन्दो की परिभाषा का भी मैं पूर्ण रूप से पक्षपाती नहीं हूँ। आवश्यकतानुसार मैंने छन्दःशास्त्र के नियमो का उल्लघन भी किया है, परन्तु उनमें परिवर्तन अज्ञता और उद्धतता से नहीं किया गया। ऐसा मैंने जान-बूझ-कर ही किया है। कुछ भी हो पूर्ण रूप से मैंने छन्द शास्त्र तथा अलंकार-शास्त्र का आँख मीचकर पालन नहीं किया। पाठक देखेंगे कि ऐसा करके मैंने पुस्तक की उपादेयता को घटाया नहीं है।

'तक्षशिला' इस नाम के सम्वन्ध में मैं दो वात कह देना उचित समझता हूँ। अव तक प्राय. कोई भी काव्य देश या नगर के नाम पर नहीं बना। प्राचीन प्रणाली के अनुसार मुझे किसी वंश या व्यक्ति विशेष

के आधार पर इसका नामकरण करना चाहिए, परन्तु ऐसा भी मैंने नहीं किया। मेरे विचार में इस जैसे काव्य का वैसा नामकरण सम्भव भी नहीं। सम्भावना की अवस्था में भी मैं इसका यही नामकरण पसन्द करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैंने पर्शियन तथा ग्रीक राजाओ के नामो का सस्कृत रूप दिया है। और ऐसा करने पर यदि कई एक सज्जनो का मुझसे मतभेद है, तो स्वनामधन्य बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन जी जैसे महानुभावों की प्रेरणा तथा मेरा अपना मत भी मुझे इस नामपरिवर्तन के लिए उत्साहित करता रहा है। जहाँ तक हो सका मैंने प्रायः सभी अँगरेजी तथा आर्य-साहित्य की पुस्तको में ग्रीक आक्रमणकारी राजाओ के नाम ढूँढ़े। उदाहरण के तौर पर महाभाष्य में मुझे डेमेट्रियस का नाम दात्तामित्रि मिला, जिसका समर्थन कई एक विद्वान् ऐतिहासको ने किया है। तथा मनाण्डर का मिलिन्द नाम भी प्राचीन साहित्य में मिलता है। परन्तु मुझे सभी नामो को आर्य रूप देना था, जैसी कि हमारे आर्य लोगो में प्रथा थी, तदनुसार उसी के मिलते-जुलते संस्कृत नाम बना डाले है। इन नामो के आर्य रूप देने में मुझे कई दिन लगातार सोचना पडा, और मैं नहीं कह सकता इस कार्य में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है। हाँ, यदि कोई सज्जन मुझे मेरे गढ़े हुए नामो के बजाय कोई प्राचीन नाम इन राजाओ तथा देशो के निर्दिष्ट कर सकेगे तो मैं सहर्ष उन नामो का प्रयोग पुस्तक के द्वितीय संस्करण में दे दूँगा।

फलतः यह काव्य कैसा कुछ बन पड़ा है इसका निर्णय सहृदय पाठक ही कर सकते है। मैंने तक्षशिला जैसे इतिहास दुरूह विषय में हाथ डाल कर अपनी अन्तरात्मा के बुख़ार को ही शान्त किया है, कवित्व-प्रदर्शन के लिए यह काम नहीं किया। मैं अपने आपको कवि नहीं समझता। मेरे विचार में कवि होना बड़ा कठिन है "कवित्वं दुर्लभं-लोके, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा"। मैं तो समझता हूँ:—

सहायक पुस्तकों की सूची

महावंश मूल ग्रंथ पाली *by* Geiger (London) 1908.

मौर्य-साम्राज्य का इतिहास, सत्यकेतु विद्यालंकार

त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र (गुजराती अनुवाद) हेमचन्द्रकृत, (भावनगर) सं० १९८३

जातक ग्रन्थ, Edited *by* E.B. Cowell, (Cambridge) 1907.

दिव्यावदान कल्पलता, ,, ,, E. B. Cowell and R. A. Neil. (Cambridge) 1886.

परिशिष्ट पर्व हेमचन्द्रकृत (भावनगर) सं० १९६२

अर्थशास्त्र श्रीचाणक्यकृत

The History of the Aryan Rule in ancient India.

Buddhist record of the western world.

A Guide to Taxila, *by* Sir John Marshall 1918

Archeological reports.

A Geographical Dictionary of Ancient India, *by* N. L. Day.

History of the Punjab, *by* Syad M. Latif (Calcutta) 1891.

महाभारत

मराठी विश्वकोष

वाल्मीकीय रामायण

Ancient and Hindu India, *by* V.A. Smith.

छन्दः सूची

वीर, उल्लाला, हरिगीतिका, गीतिका, मालिनी, द्रुतविलम्बित, भुजंगप्रयात, सरसी, रोला, छप्पय आदि।

तक्षशिला

सभी जगत के कूट तटों को
छिन्न भिन्न करती अविराम
जिसके सरल उदार गुणों में
सात्विकता की गहरी छाप
जनपद के प्रति जन पर बैठी
भरती गुण गरिमा निष्पाप

[३]

जहाँ सदर्प सिन्धु नद बहता
सब सरितों का कर उपहास
लिये अनन्त अशान्त तोयनिधि
क्षारसिन्धु मद का उल्लास
जहाँ विशाल नील धारायें
नील गगन का गा इतिहास
थिरक थिरक कर प्रभा निरखतीं
तारों का समरूप विलास

[४]

जो दुस्तर तरणी से भी था
इस धरणी पर वह सानन्द

मृगमद से उन्मत्त मृगी की
सचकित नयनों की-सी कोर
जहाँ मनुज रम्भाएँ करतीं
क्रीड़ा कलित ललित आमोद
स्वर्ग-छटा न्यौछावर होती
जिसके कान्तारों को शोध

[७]

गगनालिङ्गित निषाध[1] भूधर-
श्रेणी है पश्चिम की ओर
जो बलमय भारत को करती
अन्य देश का बल झकझोर
जहाँ एक घाटी खैबर की
व्यवसायी दल मार्ग प्रशस्त
भारतीय कौशल शिल्पों से
कला कलापों से अभ्यस्त

[८]

अधर सुधारस भासित मुख छवि
ऋषि जन जिस थल करते गान

---

[1] हिन्दूकुश।

सत्याग्रह के, सत्य ज्ञान के
शुद्ध नीतिमय मूर्ति विशेष
उन्मूलन कर दिये जिन्होंने
पाप-पुञ्ज अथ मिथ्याचार
पाकर जिन्हें हुआ पावन यह
देश-भक्ति का ले उपहार

[११]

जहाँ हुआ पापों से अनथक
पुण्यों का संघर्ष महान
विषयों का वैराग्य विभव से,
शोकों से सुख का उत्थान
प्रजा हितमयी राजनीति से
क्रूर नीति का हुआ विनाश
जहाँ नृसिंह-शक्ति से दुर्दम
स्वर्णकशिपु से अरि का ग्रास

[१२]

शब्द-शास्त्र के उद्भट पंडित
पाणिनि मुनि ने ले अवतार

संत धर्म को राज्य धर्म में
दिया बदल जिसने आखीर
जिसमें राजस सात्त्विक गुण का
हुआ अभ्युदय एक-स्थान
जिसकी तीक्ष्ण कृपाण-धार से
उड़ा शत्रु का सब सम्मान

[१५]

जिसकी पावन रज से गुरु ने
आजीवन कर धर्म प्रचार
मृत-प्राय हिन्दू-जीवन में
नवजीवन का किया प्रसार
सिर दे दिया, दिया टुक अपना
धर्म न पैतृक पथ कल्याण
किया विभव न्यौछावर सारा
भारतीय गौरव के स्थान

[१६]

जहाँ हुए गोविन्द अपर से
गुरु गोविन्दसिंह थे वीर

अपने रणमद से अरिदल को
छका दिया ले वीर्य उदग्र

जिसने फिर पंजाब भूमि में
किया आर्य-संस्कृति उत्थान
हिन्दू नभचन्दा से वे थे
वन्दा वैरागी सुमहान

[१६]

जहाँ वीर माता के पय को
उज्ज्वल करते बालक वीर
जहाँ आर्य जन विस्मृति को
फिर पैदा करते दे सिर धीर

जहाँ विपत्ति-ग्रस्त नरों का
अपना गौरव एक सहाय
जहाँ धर्म की ठीक हकीकत
दिखला गये हकीकत राय

[२०]

वह पंजाब-स्रोत आर्य-गुण
गौरव सुन्दर देश ललाम

हृदय जाह्नवी में उमड़ा-सा
जहाँ स्वच्छ पीयूष मिला
तिमिराच्छन्न घटा में कौंधी
बिजली का-सा भास मिला
सुप्त-स्मृति को पुण्य स्मृति की
याद दिलाती तक्षशिला

[२३]

विधि विधान के अदल बदल से
जिसका सूर्य समस्त हुआ
अपने जीवन की घड़ियों में
जो न कभी वित्रस्त हुआ
जिसकी कीर्ति किरण माला से
जगतीजन आनन्द वहे
हाय, न उसमें अब जीवन के
लक्षण कोई शेष रहे

[२४]

पढिए पाठक, सावधान हो
उस उजडी बस्ती की गाथ

जो जीवन विभूति भासित थे
स्वर्ग-द्युति के अथक सहाय
नय-परिवर्तन, लोकरूढ़ियाँ
देश विदेशों के आचार
देख सके ये सभी एशिया
योरोपीय विलास विचार

[२७]

थे ये मुख्य नगर तीनों ही
भारत के उत्तर की ओर
सभी नरेशों की नज़रों में
अटके दिव्य विभूति विभोर
थे भारत की नाक नाक-से
सौन्दर्य से पूर्ण समस्त
अपनी कान्त कीर्ति से जग में
कहलाते थे अति-प्रशस्त

[२८]

हुई इसी से तक्षशिला यह
ग्रीस देश इतिहास-प्रसिद्ध

अति प्राचीन तक्ष भूपति का
बना यहाँ ही वास-स्थान

उनके वंशधरों ने अपनी[1]
कीर्तिलता को दिया विकास
इसी नगर ने रवि-सम अपने
नीति-तत्त्व का किया विकास

[२१]

त्रेतायुग में भीरुमन्द था
गान्धार का एक सुदेश
कानन संकुल, कोकिल कूजित
पुष्प-सुगन्धित वीर-निवेश

रघुकुल-कमल-दिवाकर राघव
भरत भूप ने सर्व प्रथम
भूप युधाजित के कहने से
किया हस्तगत देशोत्तम

---

[1]तक्षन्तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते। गन्धर्वदेशे रुचिरे गान्धार-विषये च सः॥ वा० रा० १०१—११ श्लोक।

[३४]

यहीं परीक्षित को दंशन कर
नागों की श्री हुई विनष्ट
दिग्विजयी जनमेजय नृप में
हुई यही हिंसा उत्कृष्ट

समधिक यहाँ भुजंग-वंश का
यज्ञ-वह्नि में हुआ विनाश
इसी देश ने नृप तक्षक का
अधः पतित देखा इतिहास

[३५]

जनमेजय ने सुचिर काल तक
शासन किया, बने निष्काम
हो प्रसन्न फिर तक्ष-वंश को
सौंपा राज्य गये निज धाम

तदनु हुए सम्राट् कुरुप नृप
प्रवल प्रजागण के अधिपाल
डाली नींव जिन्होंने फिर से
पारसीक साम्राज्य विशाल

पारस अथ ईरान, चीन की
सामग्री थी यहाँ अपार

रहा कुशान-वंश तक इसका
भूपर वैभव और विलास
आज वही हतविधि-सा करता
पाया गया धरा में वास

[५०]

सिरसुख बना कनिष्क-राज्य में
नगर तीसरा उसके पास
किन्तु न उसने निज यौवन का
पाया कहीं तनिक उल्लास

नृप कनिष्क ने पेशावर को
बना लिया निज राज्य-स्थान
हूणों ने आ तक्षशिला का
मिटा दिया सब नाम निशान

[५१]

रुचिकर दर्शनीय है इस
थल धर्मराज का एक स्तूप

[५३]

उन्हीं आर्य आर्हत बौद्धों की
गाथा के वृत्तान्त महान
तक्षशिला के जीवन में
बन चमके गौरव हेतु निदान

वैज्ञानिक खोजों से जो थे
सारभूत पठनीय विशेष
उन्हीं नृपों के राज्यों का है
इसमें सुन्दरतर संदेश

[५४]

सिरकप, सिरसुख नगरद्वय की
नींव पड़ी थी जहाँ महान
उससे ही कुछ दूर बना था
इसका विद्या-मंदिर-स्थान

अगणित छात्रों के वास-स्थल
बहुसंख्यक विद्या-आगार
हस्त-लिखित पुस्तक-प्रचय था
बहु भाषाओं का भाण्डार

[५७]

बौद्ध-मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं
इसके निकट भग्न परिवेश
विद्या-मंदिर, वास-स्थल हैं
भग्न-अवस्था में अवशेष

तक्षशिला के ध्वंस आज ये
देते गत जीवन संदेश
भाग्यचक्र की धुरी धरा पर
रखती अपना स्थान विशेष

[५८]

अन्धकार अथवा प्रकाश
सुख विलास अथवा विनाश
ये भाग्यचक्र के क्रूर दूत
विधिचक्र घुमाते वस्तु कूत

इनमें करुणा का न भाव
हेय ग्राह्य का कुछ दुराव
झाँकी देते हैं उभक आप
है यही सृष्टि का कल कलाप

द्वितीय स्तर

[१]

आर्हतगामी ऋषभ-स्वामी
जैन-धर्म मतरूरे
तीर्थंकर थे सृष्टि पूज्य
अथ सद्विवेक मतपूरे

उनके थे दो पुत्र भरत नृप
तथा वाहुबलि मानी
कीर्ति-प्रिय, समुदार धर्मरत,
विद्वद्वल विज्ञानी

[२]

भरत अयोध्या के राजा थे
मुकुट मौलि पृथ्वी के

नोट—द्वितीय और तृतीय स्तर की कथा गुजराती के 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र' से ली गई है। यह जैन-धर्म का ग्रन्थ है। इसके मतानुसार ऋषभ स्वामी के पुत्र वाहुबली तक्षक ने अन्य नाग लोगो से तक्षशिला

मनोनीत सम्पन्न प्रजा के,
गुरु थे ज्ञान धनी के
अपर बाहुबलि विदित
बाहुबल तक्षशिला के स्वामी
जैन-धर्म के, ज्ञान-कर्म के,
सत्पथ के अनुगामी

[२]

क्रियापरायण सत्य सुरुचि के
जनता के थे प्यारे
पालन करते हुए प्रजा के
बने आँख के तारे
नियत वृष्टि से, ज्ञान-दृष्टि से,
धन-सम्पन्न सभी थे
सकल कला से, श्री विमला से,
मन अविपन्न सभी थे

छीन कर अपना राज्य स्थापन किया। इनकी अपने बड़े भाई चक्री भ से, जो अयोध्या के राजा थे, परस्पर विरोध होने के कारण लड़ाई हु जिसमें बाहुबली की विजय हुई। तदनन्तर बाहुबली के पुत्र चन्द्रय ने तक्षशिला में राज्य किया।

[४]

संकर वर्ण, कथा चित्रों में,
थी वक्रोक्ति पदों में
चिन्ता शास्त्र-पाठ में प्रतिदिन
था मालिन्य हृदों में

था प्रपंच माया मे,
कुत्सित कुटिल शब्द कोशों में
प्रजा सादर सभी सुखी थी
निरानन्द दोषों में

[५]

थी अनुरक्त प्रजा राजा में,
नृपति प्रजा साधन में
था सार्थक अद्वैतवाद
अविकल गति से जीवन में

शौर्य वीर्य की मूर्ति सुभट थे,
बल विक्रम पूरे थे
सन्निष्ठा से युक्त शिष्ट थे,
रूप राशि रूरे थे

[६]

सुखद सौध अति सज्जित
सुरसम नभचुम्बी थे मंदिर
जिनके कान्तकलश भासित थे
रवि से छविमय सुन्दर

विस्तृत थे बाजार चतुर्दिक,
सुघटित चौराहे थे
हाटों में विराट सामग्री,
साधन मन-चाहे थे

[७]

सर्व वस्तु का केन्द्र इन्द्र का
अपर नगर-सा था वह
सभी विनोद वस्तुओं से था,
साधित स्वर्ग सुखावह

क्रीड़ासर, उद्यानवाटिका,
सज्जित रंग महल में
रस आनंद धार बरसाता
प्रत्यह चहल-पहल में

[८]

ज्ञान गिरा मुखरित थी
होती मुख से वटुक जनों में
शौर्य, वीर्य की आकृति
जगती क्षत्रिय वीर मनों में

थे सुन्दर अतिकाय,
आर्य गुण गौरव नगर निवासी
थे नीरोग, कपट छल छूँछे,
उज्ज्वल मान विलासी

[९]

राजाज्ञारत, अनघ, पुण्यगत,
सुललित मति अतिदानी
सस्मित वदन, कान्त कल
आकृति वीर-प्रतिकृति मानी

कहीं पाप का नाम नहीं था,
कहीं न भेद वचन में
कहीं न कूटनीति का परिचय,
कहीं न ईर्ष्या मन में

[१०]

कहीं न था अभियोग योग ही,
पर-द्रव्य दुख भारी
सभी सभ्य थे, धर्मभीरु थे,
दया-मूर्ति नर-नारी

इस विधि शासन सुख से
फूले रहते थे पुरवासी
नृपति बाहुबलि यशः-
सुरभि थी फैली इन्दु-कला-सी

[११]

माण्डलीक नृप इधर-उधर के
लिये भेंट आते थे
तक्षशिलाधिपपादपद्म में,
शीस झुका जाते थे

एक दिवस सिंहासन पर
बैठे थे नृपति सभा में
निकट सुभट सन्नद्ध वद्ध
परिकर थे वीर-कला में

[१२]

थे अति वृद्ध, सिद्ध नय-पथ में
बैठे सचिव निकट ही
परामर्श देते थे सुन्दर
निज प्रतिभा से झट ही

बीच बीच में प्रजा समुन्नति की
चलती चर्चा थी
बीच बीच में धर्म-कर्म की
देवों की अर्चा थी

[१३]

देश विदेशों से सारे
संवाद सुनाते आके
चर विचरण करते लोकों में
रूप अनूप बनाके

इसी समय प्रतिहारी ने
विनती की शीस झुका कर
प्रभो, द्वार पर खडा
अयोध्यापति का एक सभाचर

[१४]

महामते, वह मूर्तिमान है
भरत नृपति संदेशा
आया भरत अयोध्यापति का
मानो शर हो ऐसा

जो आज्ञा हो दयानिधे,
उससे मैं कह दूँ जाके
सान्द्रनग-ध्वनि से
भूपति ने कहा समीप बुलाके

[१५]

सादर भीतर लाओ उसको
देखें क्या कहता है
नदी प्रवाह मार्ग से हटकर
किधर कहाँ बहता है

रत्नजटित सिंहासन पर
बैठे ही हुए नृपति को
सपादमस्तक अभिवादन कर
देखा परिषद गति को

[१६]

तडित समान, चंड तेजस्वी,
रत्नजटित नृप देखा
मानो रविमण्डल से उतरी
दिव्य किरण की रेखा

गुणिजन संकुल नाग राज कुल
कलित बाहुबलि बैठे
न्याय-नीति में, ज्ञान-गीति में
हो सदेह मनु पैठे

[१७]

नागराज से भूषित मलयाचल
सम नृप शोभित थे
चमरी मृग सेवित हिम नग से
वाराङ्गना विहित थे

तब सुवेग से तक्षशिला-
धिप ने पूछा आदर से,
कहो अयोध्याधिप सकुशल हैं
उच्छल बल सागर से

[१८]

कामादिक षट शत्रु विजेता
छै खंडों के स्वामी
है सानन्द सुखी सुवेग क्या
वे देशान्तर्यामी

अरि हर कादम्बिनी करी के
निकर कुशल से तो हैं
वायु-वेग से, विद्युत्-गति से
त्वरित तुरग मन मोहैं

[१९]

प्राण निछावर करनेवाली
प्रजा निरामय भी है ?
है परिवार सुखी भूपति का
क्या निर्विघ्न सभी है ?

इस प्रकार वृषभात्मज बलि
ने घन गम्भीर गिरा से
पूछी कुशल सभी की चर से
नय की परंपरा से

[२०]

निरावेग होकर सुवेग ने
सांजलि शीस झुका कर
उत्तर देते हुए कहा यों,
हे विज्ञान-निशाकर !

हैं सकुशल सम्राट् भरत
परिवार सहित तव भाई
विधि भी वाम नहीं हो सकता
रहता है अनुयायी

[२१]

है किसकी सामर्थ्य
अयोध्यापति की अकुशल चाहे
प्रजा, देश, हस्ती, तुरंग
सेना सानन्द सदा है

हैं षट खण्ड अधीश्वर हे नृप,
उनसे कौन बड़ा है
सारे भूप्रदेश के नायक
सम्मुख कौन अडा है

[२२]

नृपति सदा अविरुद्ध बुद्धि से
जिसका सेवन करते
पादपद्म की रजः-सुरभि से
पाप ताप निज हरते

कुण्ठित कंठ, संकुचित आकृति
नृपति देख रुख जिसका
हर्ष विषाद भावना भरते
लोचन-फल मुख जिसका

[२३]

महाभिषेक निरख जिसका
सुर इन्द्रादिक ललचाते
धन्य मही पर भरत भूप हैं
मुक्तकंठ से गाते

किन्तु आपका वहाँ न आना
महाराज ने जाना
उदासीन हो बैठे नृपमणि
दुःख उन्होंने माना

[२४]

यथासमय भारत भूतल को
किया हस्तगत अपने
बने चक्रवर्ती, वशवर्ती
लगे समुद्धत कँपने

नृपतिवर्ग ने यथाशक्ति दे
भेंट उन्हें शिर नाया
महामना सम्राट् भरत ने
आदर दे अपनाया

[२५]

वज्र समान कठोर आप ही
केवल निकट न आये
भ्रातृभाव की रक्षा करते
कोई भेंट न लाये

है अत्यन्त अवज्ञा यह नृप
दर्प न यह अच्छा है
आदरणीय बड़ों का आदर
करना शास्त्रेच्छा है

[२६]

यह अविनय महाराज सहेंगे
यद्यपि अनुज समझ के
किन्तु पिशुन उकसा ही देंगे
उद्धत तुम्हें निरख के

अतः हमारे साथ चलो
हे नृप बनकर अनुगामी
भाई बड़े क्षमा कर देंगे,
महाराज हित कामी

[२७]

महाराज से भूल न यद्यपि
हुई तुम्हारे हित में
गुरुजन सादर वन्द्य सदा यह
सोचो चलो सुपथ में

सूर्योदय से तमो नाश सम
कर्णजप बिनसेंगे
अन्य नृपतिगण आदर देंगे
खल निरुपाय खसेंगे

[२८]

देवों में शचीन्द्र सम शोभित
चक्री की छाया में
तेजःपुंज बनोगे राजन
कीर्ति-कुंज काया में

अयस्कान्त आकृष्ट लौह सम
सब नृप को भजते हैं
दानव, देव, यक्ष, नर, किन्नर
भक्ति भेंट सजते हैं

[२९]

धन्य मान देवेन्द्र जिन्हें
अपना अर्धासन देते
क्यों न अनुग्रह भूप उन्हीं का
केवल चल कर लेते

चारचक्षु से यह कहकर
चर हुआ शान्त सुनने को
प्रत्याशित भाषा भावों को,
सोत्कंठ गुनने को

[३०]

तव सुबाहुबल धर्षित भूतल
भरत-अनुज यों बोले
प्रत्युत्तर सुस्पष्ट, तर्कमय
भाव-पूर्ण, रस-घोले

धन्य दूत, तव वावदूकता
प्रौढ स्वार्थ साधन में
व्याज-स्तुति में, वक्र उक्ति में,
स्वामी हितचिन्तन में

[३१]

निःसन्देह सुसेव्य पिता-सम
भाई पूज्य हमारे
हैं वैभव सम्पन्न, यशस्वी
राजा हितू तुम्हारे

हम छोटे प्रदेश के शासक
अल्प विभववाले हैं
अति सामान्य निडर सीधे से
दुर्बल दलवाले हैं

[३२]

लज्जा उन्हें कदाचित हमको
देखे से आ जाती
इसी लिए मिलने में उनसे
हमें सकुच थी आती

रहे व्यस्त चिरकाल युद्ध में
पर-राजस्व हरण में
यही चाहते भूपति हैं अब
हम भी चलें शरण में

[३३]

एक यही कारण सुवेग है
तुझे भेजने का भी
भ्रातृभाव की रक्षा के हित
यदि जाना होता भी

तदपि लोभवश निःसंशय
ही, राज्य दबा लेने को
कुटिल नीति का प्रयोग करते,
निष्कंटक होने को

[३४]

इतर राज्यों का भाई ने
तो सर्वस्व हरा है
मुझसे भी फिर कैसे मानूँ
उनका प्रेम खरा है

यही हेतु है तुम जैसे
मायावी दूत पठाये
किन्तु वास्तविक बात नहीं
छिपती है कभी छिपाये

[३५]

इतर नरेशों के समान ही
राज्य न जो है सौंपा
वज्र समान कठिनता का
अपराध अमिट आरोपा

वे सुकुमार मञ्जु रञ्जित
रुचि, कोमल कुसुम-सरीखे
किन्तु कूट कौटिल्य-शास्त्र
के हैं रहस्य सब सीखे

[३६]

गुरुजन के प्रति समधिक
श्रद्धा शुद्धाचरण सही है
यदि गुरु गौरवमय
सन्मन हों श्रद्धा सत्य वही है

पुत्रघातिनी जननी के
जन नीके कृत्य न कहते
अवनी के अब नीके
नृप के कुवचन भृत्य न सहते

[३७]

विषमय अमृत भी गर्हित है
हित यदि अहित भरा हो
हेय रोग कीटाणुमयी
यदि रत्न-प्रसू धरा हो

क्या अपहरण नाश था
हमने किया अश्व, नगरों का
या उन्नति-पथ चढते
हमने विघ्न डालकर रोका

[३८]

इसमें क्या अविनय उठ बैठा
जो नृप राज तुम्हारे
पिशुनों से भड़काये
जाकर शत्रु बनेंगे भारे

हे सुवेग हम अपने ही में
अति सन्तुष्ट सुखी हैं
छै खण्डों के स्वामी तेरे
अब भी नृपति दुखी हैं

[३९]

अन्तर्यामी ऋषभ–
स्वामी ही हैं पिता हमारे
केवल यही बीच
दोनों में है सम्बन्ध हमारे

मेरे वहाँ चले जाने से
यश क्या बढ़ जावेगा
विधु का मान निहोरा रवि
क्या कुसमय चढ़ जावेगा ?

[४०]

भ्रातृभाव की रक्षा करते हूँ
यदि आज्ञा कारी
तो भी सभी मुझे मानेंगे
नृपति अनुग्रहधारी

मैं हूँ उनका निर्भय भ्राता
यह सम्बन्ध भला है
अनुचित उचित अपेक्षा-
कृत है निर्णय कठिन कला है

[४१]

राजनीति कृत भेद रूप से
हम दोनों ही सम हैं
वे स्वामी मै अनुचर यह तो
दाम्भिक नीति विषम है

यदि मैं वज्र समान परुष
हूँ, यह स्वभाव यदि मेरा
तो अभेद्य अविजेय रहूँगा
व्यर्थ विवाद घनेरा

[४२]

भरत सैन्य सागर में हे चर,
नृपति अन्य यदि डूबे
तो मैं हूँ वड़वाग्नि क्षुब्ध हैं
जिससे सब मनसूबे

ले जाओ सन्देश हमारा
यहीं सुनाओ जाके
मम भुजदण्ड शुण्ड कण्डूयन
मेटो उन्हें बुला के

[४३]

सावलेप, सुनि गूढ़, अतर्कित
व्यंग्य, मर्म वेधी-सा
उत्तर सुन चर ने उत्तर दिशि
लखी प्रचण्ड विभीषा

चित्रक से विभीषिका कृति युत
अयुत युद्धजित भड़के
कवच विचुम्बित शस्त्र
झनझना उठे वीर-भुज फड़के

[४४]

रक्ताञ्चित उद्दीप्त नेत्र पुट
भ्रुकुटि कुटिलता लीन्हे
स्फुरिताधर विस्फूर्ति प्रचुरतर
महाकाय मद भीने

सत्वर खरतर शर तरकस से
खर खर करते झमके
अति चंचल कुण्डल, अत्युद्धत
बल, वीर बाहुबल चमके

[४५]

खडा सुवेग वेग विस्पन्दित
अस्थिर मन मुरझा के
हुआ विवर्ण नितान्त
सशंकित मस्तक चला झुका के

साहस हीन सभी कुछ
खोकर मानो लौट रहा था
कीर्ति, विभूति अयोध्यापति
की खोई शोध रहा था

[४६]

न था वेग उद्वेग था एक ही
न आनन्द था शोक उद्रेक ही
न चांचल्य था चाल में अश्व की
न प्राबल्य था दूत में दृश्य ही

[४७]

दला दर्प दम्भी प्रभा-हीन-सा
चला जा रहा दूत था दीन-सा
यथा नाग बेचैन मणि हीन-सा
निकाली हुई ताल से मीन-सा

[४८]

अभिक्षिप्त दारिद्रय के रोग से
पथ-भ्रष्ट हो ज्यों यती योग से
निरालम्ब-सा हीन उद्योग से
निराशा ग्रसा हीन संभोग से

[४६]

यही सोचता जा रहा पन्थ में
अयोध्या प्रदेशाऽऽगया अन्त में

यथा नीति दूतेश हो के खड़ा
जडीभूत-सा दीन लज्जा गड़ा

[५०]

कहो सुवेग हमारे छोटे
भाई क्षेम कुशल से
है वह वीर वृत्ति, उद्धत बल
नृपति वाहुवल कल से

उत्तर देने लगा प्रणत वह
अनुगत चर हित चारी
सकुशल, तुलित कमल दल
लोचन, भूप विनोद विहारी

[५१]

आप समान चण्ड तेजस्वी
अशकुन उन्हें कहाँ है
तिमिर भला कैसे रह सकता
रश्मि-द्युमणि जहाँ है

भाई समझ भ्रातृभावों पर
उन्हें उचित उकसाया

कटूवौषध देकर तदनन्तर
दुःख-ग्राम दिखाया

[५२]

रुद्ध सर्प सम असदर्प से
नय से क्रीड़ा करके
सन्निपात रोगी सम नृप ने
कहना श्रवण न करके
महामते, उद्दण्ड अशंकित
नृप ने भीति न मानी
घन गम्भीर गिरा गर्जन से
अपनी कीर्ति बखानी

[५३]

साम, दाम अरु दंड नीतियाँ
निष्फल हुई वहाँ थी
बल-वैभव साम्राज्य सु गौरव
निष्फल सब महिमा थी
देव, वाग्मिता बाहुबली की
अद्भुत ओजमयी थी

सुन्दर, सालंकारिक, रस युत,
गर्भित अर्थमयी थी

[५४]

यही देव संदेश में ला रहा
दुराराध्य दुर्दम्य भाई जहाँ
प्रचंडांशु से वीर वे भूप हैं
अति-क्षुब्ध पायोधि के रूप हैं

[५५]

उन्हें साधना दुःख आराधना
उन्हें बाँधना सिंह को साधना
दुराराध्य हैं दुःख से साध्य हैं
महाभाग संग्राम संसाध्य है

[५६]

सुन उद्दंड समुद्धत नृप की
क्षत-क्षार सी वाणी
विस्मय, कोप, दया भावों में
भरत वृत्ति उरझानी

दुर्विनीत भ्राता पर करते
हुए गर्व नृप बोले
सुर, असुरों में, नर नागों में
वीर बाहुबल भोले

[५७]

भाई ही है फलतः मेरा
गौरव मुझे बड़ा है
है अति शुद्ध हृदय, सज्जन है,
यदपि स्वभाव कड़ा है

तृण समान था तुच्छ जगत
इसको तो बचपन ही से
औद्धत्य लख पिता मानते
वीर इसे मन ही से

[५८]

दया द्रवित लख महाराज को
मुग्ध शान्ति सागर में
सेनापति सुषेण खीजे ज्यों
अस्त्र-क्षत संगर में

दयानिधे, समुचित नर गण
पर दया ठीक है करना
पृथ्वीपति का काम प्रजा का
पालन-पोषण करना

[५६]

किन्तु कृपाकण क्रूर सर्प पर
वरसाना अनुचित है
हिंस्र जन्तु को वढ़ने देना
नहीं कभी समुचित है

विष दाँतों के बिना उखाडे
सर्प-दर्प कब घटता
राज्य-दंड के बिना नीच खल
खलता से कब हटता

[६०]

हे सम्राट्, अखंड भूमि पर
विजय-ध्वजा उड़ाई
विश्वविजयिनी शक्ति आपकी
कीर्ति सुगन्ध सुहाई

एक असत्याचरण सती का
है कलंक जगती का
जगविजयी की एक पराजय
अमिट कलंक मही का

[६१]

उद्धत को श्रीहत करना,
श्रीहत को उन्नति देना
पालन करना प्रजा सुहित से
नीति नृपति की सेना

भ्रातृ रूप अरि बढ़ने देना
प्रभो, विशुद्ध नहीं है
क्षमा शत्रुओं पर करना
क्या नीति-विरुद्ध नहीं है ?

[६२]

करते हुए समर्थन मन्त्री
सेनापति विजयी का
बोले कृपानाथ, सेनापति
वचन सुसम्मत नीका

है अत्यन्त अवज्ञा भूपति,
बढ़ने न दें प्रथा को
अपराधी को दंड न देना
उचित नहीं राजा को

[६३]

अनुज समझ यदि दंड न देंगे
कर्तव्य-च्युत होंगे
भीरु कहेगा जगत जगन्मणि,
उपहासास्पद होंगे

विश्रुत कीर्ति सुषेण बाहु-
सागर में मज्जन करके
किस अरि-वधु ने कुंचित
मेचक केश किये सज करके

[६४]

कब कृतान्त ने उसे पुकारा
नहीं अकाड कडक कर
सुकृत कलाओं ने कब उसको
छोडा नहीं झिडक कर

इस प्रकार मन्त्री ने
आदर-पूर्वक यही विनय की
युद्ध-ध्वनि ही शुद्ध मन्त्रणा
है अविरुद्ध विजय की

[६५]

महाराज ने हुंकृति द्वारा
साम्मत्य दिखलाया
जयस्पृहा ने किससे क्या कुछ
कार्य न कटु करवाया ?

स्वीकृति पा शत्रुञ्जय
विजयी सेनापति भुज फडकी
बिजली जैसी स्फूर्तिमयी
सेना उन्मादिनि कड़की

[६६]

महाराज को मर्म पीडा हुई
हुआ नष्ट भ्रातृत्व व्रीड़ा हुई
कहा आज सन्नद्ध हो युद्ध को
रण-ध्यान दो शत्रु उद्बुद्ध को

तृतीय स्तर

[१]

इस प्रकार सुविवेक-शून्य
भूपति ने रण की ठानी
भ्रातृभाव की हुई इति-श्री
विजय-श्री ललचानी

स्वार्थवाद ने संसृति में
घर घर डाला है डेरा
पशुबल ने सानन्द बसाया
पाप ताप बहुतेरा

[२]

कर्तव्यों में दम्भभाव की
गहरी छाप रहो है

सात्त्विक नद में तमोगुणों की
धारा वृत्ति वही है

कपट, ईर्ष्या, मद, माया का
पलड़ा झुका रहा है
मृदुता में पारुष्य, कुसुम को
कण्टक घेर रहा है

[३]

धर्म पाप परिभूत, सभ्यता
आडम्बर जननी है
लाञ्छन-सहित सुधाधर है,
बाँसों में अग्नि बनी है

काञ्चन में काठिन्य, गुणी में
दारिद बसा हुआ है
सत्यों में कटूक्ति, संयम में
साधन फँसा हुआ है

[४]

है संयोग वियोग विमिश्रित,
माधव ग्रीष्मान्तक है

जीवन मृत्यु मुखापेक्षी है
सुख सब दुःखान्तक है

राजनीतियों के पर्दों में
अन्तिम नाश गॅसा है
तृष्णा का विकास भरमा कर
नर को कब न हॅसा है

[५]

नीच कामना पूर्ति ले रही
कर्तव्यालम्बन है
पाप-व्याध जाल फैला कर
फिरता जग कानन है

मिथ्या मिश्रित सदाभास के
पर्दों में ही दुख है
स्वच्छ भावना हृदयों मे हो
यदि तो दुख भी सुख है

[६]

फलतः उस निरीह भाई पर
भरत सदल चढ आया

तिमिराच्छन्न सूर्य को करके
भूमंडल दहलाया

अगणित सेना में अनथक
बल साहस उमँड़ रहा था
मानों हो उद्‌बुद्ध वीर-रस-
सागर उभर रहा था

[७]

शक्ति, परशु, तोमर, भालों से
शर से सैन्य सजी थी
कहीं भुशुण्डी, दण्ड, शतघ्नी
शकटावली सजी थी

संख्यातीत नाग अश्वों पर
विकट वीरता वाले
धारे सायक तीक्ष्ण गरल मय
नायक थे मतवाले

[८]

मत्त मदोत्कट विकट नाग पर
भरत भूप बैठे थे

हृदय-द्रावक, रुद्रशक्ति धर,
देह धरे ऐंठे थे
सचिवाग्रणी तदनु सेनानी
शूर सुपंण बली थे
कम्पित भूतल, विदलित
अरिदल, हर्षित चित्तहली थे

[९]

झंझा मदभंजन, शत्रु प्रभंजन
तुंग तुरंगम चलते
निजपक्षानंदन, शत्रुनिकंदन,
स्यन्दन मन्द न चलते
नाडिन्धम निर्घोषों से नभ
मण्डल मण्डित कर के
धूसर धूलि धरा से धवलित
अम्बर मे रज भर के

[१०]

अरिदल धर्षिणि, रण-प्रहर्षिणि,
सेना मद माती सी

तक्षशिला के निकट चली,
पहुँची सत्वर तडिता सी

यथा समय संवाद मिला
नृप को उनके आने का
स्वार्थों का संग्राम छिड़ा
पृथ्वीपट अपनाने का

[११]

भाई का भाई से रण था
स्वार्थ साधना धन था
ऐश्वर्य के दो दासों में
जय का छूँछापन था

दृश्य कहाँ भूला यह भारत
भरत राम जीवन का
आत्म-समर्पण भाई पर
करना जिनका सद्धन था

[१२]

त्याग जहाँ उन्नति था, अवनति
आत्म विभूति प्रवर्धन

रोग वासना, जहाँ रूप विष,
काम कला कुत्सित मन,
जीवन जहाँ परोपकार था,
मृत्यु प्रजा-हित हानी
धन देने के लिये, पराक्रम
दीन-त्राण निसानी

[१३]

रण-भेरी ने भैरव स्वर से,
वीरों ने हुंकृति से
अश्वों ने हिनहिना, गजों ने
निज शुण्डाकृति गति से
शस्त्रों ने झन-झन कर
खरतर अस्त्रों ने नभ छूकर
दिया शतघ्नी ने गर्जन कर
भरत भूप को उत्तर

[१४]

सेनाएँ बढ चलीं उदधि-सी
विजय तरंगें लेतीं

उद्भट, विकट वीर रस
उत्कट, साहस तरु को सेती
अश्व पंक्तियाँ, गजालियाँ
अथरथ पर सेना चलती
भरत सैन्य सागर शोषण को
वडवानल-सी जलतीं

[१५]

विजय-श्री की ललित लालसा में
उन्मत्त सुभट थे
क्षात्र-धर्म पालन चिन्ता में
हुआ प्रात जय रटते
कवच विचुम्बित शस्त्र साधना
में अति लिप्त सभी थे
युद्धतीर्थ से मोक्ष-प्राप्ति में
तत्पर हुए सभी थे

[१६]

रणोन्माद मद पिये हुए
सेनाएँ वढ कर आईं

कालान्तक सम मिथः शत्रु पर
कोप-दृष्टि दौड़ाईं
निर्घोषों से नभ कम्पित कर
तडिता से चमकाते
अस्त्र शस्त्र सन्नद्ध हुए
यम-दण्ड प्रचण्ड दिखाते

[१७]

वज्र-दण्ड से नग स्फोट-सी
चण्ड-ध्वनि होती थी
उद्धत उदधि तुंग वीची सी
विभीषिका होती थी
काल दण्ड कल्पान्तक करने
को बढ़ता-सा आता
तडित लास्य-सा विकट रुद्र का
अट्टहास सुन पाता

[१८]

प्रलय-काल ही लख अकाल में
अमर उठे घबरा के

जय जय-युक्त नीति-मय
बोले वचन भरत से आके

हे नरदेव, देवपति सम ही
आप महाराजा हैं
कोई नहीं प्रति-स्पर्द्धी है
सभी विनीत प्रजा हैं

[१९]

महामते, क्यों रण ठाना है
भाई से भूपति ने
यह अदूरदर्शिता अनुभव
शून्य कृत्य मति हीने

विश्वविजय करने पर भी
क्या रण की चाह बनी है ?
इन्द्रिय वृद्ध, वृद्ध सम समधिक
वृत्ति विलास सनी है

[२०]

भ्रातृ युद्ध है दो हाथों का
मिथः प्रपीडन-सा ही

विजय-श्री की अधिगति में
सन्तोष अभाव नशाही
ज्यों उन्मादी गज गण्ड-स्थल
घिसता वृक्ष विकट से
तव भुज भी गज गण्ड
कण्डु सम चाहें अरि उद्भट से

[२१]

किन्तु विनाश जीव का होगा
यह न विचार रहा है
आमिष-भोजी सम हिंसा का
क्रूर प्रवाह बहा है
चन्द्र विम्ब से अग्निवृष्टि
ज्यों सम्भव नहीं कभी है
उसी तरह तेरा यह भूपति,
संगर-युक्त नहीं है

[२२]

यती संग सम युक्त तुम्हारा
रण से उपरत होना

बीज न राम भूमि पर
भूपति, भ्रातृ-द्रोह का बोना
कारण-जन्य कार्य सम भ्राता
हटते लौट पड़ेगा
विश्व-क्षय में कभी न तुमसे
हे नृप, वह अकड़ेगा

[२३]

सुख से लौट चलो हे भूमिप,
दल बल सब ले जाओ
नाश-नीति से पालन सुन्दर
जग को यह दिखलाओ
प्रत्युत्तर देने में तत्पर
अपराजितबल, बोले
युक्ति-युक्त हैं वचन तुम्हारे
सत्य सुरुचि के घोले

[२४]

कोई नहीं प्रतिस्पर्द्धी है
यद्यपि ठीक कहा है

अभिमानी का मान तोड़ना
भी नृप-नीति महा है

पिता-समान मानता मुझको
बाहु-बली पहले था
विजय-दण्ड सम आदेशों को
शीस झुका के लेता

[२५]

है यथार्थ परमार्थ रूप,
यह बात मुझे जो खलती
इसी लिये रण छेडा मैंने
दमन-नीति ही फलती

देवों ने फिर कहा भूप,
यह कारण गूढ़ नहीं है
स्वार्थ वासनाएँ उत्कट हो
तुमको मूड रही हैं

[२६]

अस्तु यही हो जो तुम
चाहो किन्तु विनय जो मानो

द्वन्द्व युद्ध ही करो परस्पर
विजय-चिह्न यह जानो
इसी बात का निश्चय
हम तव भ्राता से कर देंगे
तत्पर उन्हें इसी पर करके
वचन-बद्ध कर लेंगे

[२७]

यह कह देव बाहु-बलि
सम्मुख पहुँचे सत्वर जाके
बैठे अत्यादृत हो नृप से
सारी कथा सुना के
रण-परिणाम दिखा कर
नृप से कहा युद्ध मत रचना
जगत नाश के कारण
बन मत द्रोह-ताप से तचना

[२८]

यदि अनिवार्य कार्य यह
रण हो, द्वन्द्व युद्ध सुन्दर है

पौरुषमयी परीक्षा का
यह अनुपम एक मुकुर है
शिष्ट-श्लिष्ट सरस भाषा में
नृप ने उत्तर देते
रण-चातुर्य-शौर्य-सौरभ से
सज्जित करवट लेते

[२६]

कहा अधृष्य शिष्य हूँ
गुरु का, सेवक सखा प्रजा का
गौरवशाली का गौरव हूँ
मित्र सदाशयता का
द्वन्द्व युद्ध भी मुझे मान्य
सामान्य युद्ध को तज कर
नहीं मुझे इच्छा है
केवल भाई आये सज कर

[३०]

विनय, नीति, मति, शुद्ध
न्याय से किंचित भी न टरूँगा

जैसी इच्छा हो भाई की
मैं भी वही करूँगा
हो कल्याण चले यह
कह सुर निकट भरत के आये
द्वन्द्व युद्ध के लिये
समुद्यत हैं ये वाक्य सुनाये

[३१]

तक्षशिलाधिप ने प्रतिहारी
को फिर इधर बुला के
नर संहारक रण यह
अनुचित कह सब से समझा के
भरत और मैं ने प्रतिहारी
द्वन्द्व युद्ध सोचा है
मनुजनाश से यही भला है
जो यह कार्य रचा है

[३२]

सिर धर राजाज्ञा प्रतिहारी
कहने लगा स्वदल से

युद्ध न होगा सम्प्रति सैनिक
गण अपना अरि दल से
जन विनाश से घबरा कर
देवों ने विनती की है
द्वन्द्व युद्ध जय दो राजों की
सात्विक विजय-श्री है

[३३]

एक विशाल अखाड़े में
चक्री का बाहुबली का
मल्ल युद्ध होगा, तब देगी
विजय-पताका टीका
वज्र-ध्वनि-सी शुष्क गिरा
सुन सेना शोक मलीना
पंकज वृन्द तुषार पात-सी
हुई दुखी अति दीना

[३४]

सम्मुख भोज्य पदार्थ छीन-
सा लिया गया हो ऐसे

गोदी से ही छीन लिया हो
शिशु माता का जैसे
क्रूर निराशा ने तोड़ा
सब दिल उन विकट भटों का
विधि ने बढ़ती आशा को
दे झोंका मानो टोका

[३५]

सारे ही अरमान सिराने
मन प्रसून मुरझाने
देता हो रह रह मानो
दुर्भाग्य पुराने ताने
व्यर्थ हो गई शस्त्र-चातुरी
हुआ अनर्थ घनेरा
हृदय-स्पन्दन बन्द हुआ,
सब दुःखों ने आ घेरा

[३६]

साहस सहमाया, बल भूला,
विक्रम वक्र-क्रम-सा

ओज उसासें भरता, विभ्रम
बहक गया दिग्भ्रम-सा
उधर बनाया गया एक
अति सुन्दर रम्य अखाड़ा
दर्शक पीठ चतुर्दिक
आगे भेरी, पटह, नगाडा

[३७]

गलितगण्ड गज स्वर्ण पीठ पर
बैठ भरत नृप आये
ध्वजा उड़ाकर सिंहनाद-सा
करते रक्षक धाये
इसी तरह रण-दक्ष क्षितीपति
तक्षशिला ने आकर
द्वन्द्व युद्ध के लिये समुत्सुक
देखे खड़े सभी नर

[३८]

उचित युद्ध परिधान पहिन
दोनों ने हाथ मिलाया

विजय-कामना ने दोनों में
साहस, ओज बढ़ाया

ताल ठोक भूखण्ड कँपाते
गुरुतर गदा चलाते
आघातों का उत्तर देते
दिग्गज मत्त डुलाते

[३९]

हुई युद्ध की वृष्टि-सी गर्जना
महाताल-सी ताल की तर्जना
किया वज्र निर्घोष यों तक्ष ने
नग-स्फोट जाना प्रजापक्ष ने

[४०]

पूर्ण मुष्टि आघात
परस्पर नृप थे करते
धूलि भरे, रण रंग
मत्त, रणभूमि विचरते
गेंद समान उछाल
विशाल भुजा में धरते

रण का रुद्र प्रकार
बढा भीषणता भरते
आकर्षण, उत्क्षेप का
घर्षण शक्ति विलास था
उत्सर्पण उत्फाल का
भीषण भाव विकास था

[४१]

क्रम क्रम से विक्रम भर
नरपति ताक झाँक कर
अट्ट-ध्वनि कर झटिति झपटते
रण-मद से भर
दुर्दमनीय दुराशा-जय से
निर्भय बढ़ कर
दाव पेच कर एक दूसरे
से भिड भिड कर
द्वन्द्व युद्ध में मग्न थे
भरत बाहुबलि भूमि-धर
भरत हुए वित्रस्त से
व्यस्त हो गिरे भूमि पर

[४२]

हाहाकार हुआ सेना में
भरत नृपति की अति ही
विधि गति को लखने में सुचतुर
देखी विधि की गति ही

भूखंड खण्ड विजय वारिधि में
जिसके अरि दल डूबे
खर शर दण्ड सुमण्डित अरि
सिर कटे, शत्रु सब ऊबे

[४३]

जिसकी चारु चरण रज
राजित विजित महीपति सारे
सदा देश पालन करने को
सविकल खड़े बिचारे

भ्रूभंगी पर मस्तक झुकते
सिंहासन थे हिलते
क्रोध वह्नि में नरपति
जिसकी थे पतंग से जलते

[४४]

औद्धत्य के क्षुब्ध उदधि को
जिसने झट मथ डाला
जिसने अरि वधु अश्रु-नदी में
मज्जन किया निराला

सुरपति जिसके शौर्य
वीर्य पर असुरों को धमकाते
विक्रम की विभूति पा
जिसकी मित्र विनोद मनाते

[४५]

आज वही नृप द्वन्द्व युद्ध में
मूर्छापन्न पड़ा है
गर्व न खर्व हुआ हो
जिसका ऐसा कौन बड़ा है ?

मूर्छित निरख भरत भाई
को बाहुबली घबराये
भ्रातृभाव से आप्लुत हो
निज दोष समझ सकुचाये

[४६]

विस्मृत हुई विजय की
इच्छा वंश रक्त गरमाया
मोती से आँसू आ झलके
भ्रातृ-प्रेम अँकुराया

हाय, कहाँ विषरस घोला
इस कुल की परम्परा में
यौवन, राज्य विजय की
इच्छा हैं ये पाप धरा में

[४७]

जग-विश्रुत ऋषभ-स्वामी
का मैं कुपुत्र कुलतापी
भ्रातृ हनन को हुआ व्यग्र हा,
अत्युत्कृष्ट नशा, पी

यत्न-जन्य उपचारों द्वारा
मूर्च्छा से वे जागे
विह्वल-हृदय निरख भ्राता
को स्वयं प्रेम से पागे

[४८]

गाढ भुजा से आलिंगन कर
अपनी निन्दा करके
लज्जा खेद विनय रस साने
स्नेह-सुधा से भर के

अश्रु बिन्दु से चरण कमल धो
बाहुबली यों बोले
भ्रान्ति हुई मम दूर ज्ञान ने
चक्षु-पटल हैं खोले

[४९]

सब कुछ सौंप भरत भूपति को
लिया विराग सभी से
निस्पृह, निर्मम, निर्भय हो
सब त्यागा जग निज जी से

समाधिस्थ हो सत्पथ देखा
परब्रह्म पद पाया
जीवन भूति ज्वलन्त निरख
सब जग ने शीश झुकाया

[५०]

उधर भरत ने चन्द्रयशा को
तक्षशिलाधिप माना
बाहुबली सम सुचिर पुत्र ने
राज्य किया नय साना

तक्षशिला ने चन्द्रयशा का
देखा विभव अनूठा
प्रजा पालते हुए न जिससे
कभी रमा-रुख रूठा

[५१]

वही विभूति कीर्ति लतिका भी
वैसी हरी भरी थी
राज्य-श्री न न्याय से विचली
अरि से भी न डरी थी

तक्षशिला की भग्न स्मृति में
वैभव की वे घड़ियाँ
टूटे तारों की सी मिलती
पड़ी हुई गुल झड़ियाँ

चतुर्थ स्तर

[१]

इस भाँति भारतवर्ष के
उस रम्य भूतल पर सदा
विज्ञान की आचार की
वर धर्म की शुभ सम्पदा

फैली प्रदेशों में फली
फूली समुन्नति पा गई
सत्पथ दिखा कर देश को
दृढ अटल कीर्ति जमा गई

[२]

चक्र फिर बदला सुखों का
दुःख में परिणत हुआ

ग्रीक[1] वासी आम्भि नृप था
राज्य रक्षारत हुआ

फिर अधर्मों की धरा पर
पाप रज आँधी चढ़ी
स्वार्थ मद की प्रेरणा से
शत्रुता व्याधी बढ़ी

[३]

उसने डुबोया नाम गोतम
की दया का सत्य का
विश्वविद्यालय हुआ
विध्वस्त सत्साहित्य का

काया पलट-सी हो गई
विद्वेष ने घर कर लिया
आतंक में गौरव रहा,
विजय-स्पृहा ने घर किया

---

[1] सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय आम्भि तक्षशिला का राजा था।

[४]

जय-लालसा में आम्बि नृप की
राज्य सीमाएँ बढ़ीं
अपने पडोसी नरेशों की
विजय को सेना चढी

उस समय पार्वत्य राज्यों
को विजय करते हुए
पौरुष[1] अधिप पर किया
धावा हृदय से डरते हुए

[५]

चाहता था आम्बि यह
पौरुष वशी होकर रहे
साम्राज्य विस्तृत हो
अनवरत हम यशी होकर रहें

बहुत कुत्सित रीतियाँ
स्वीकार की इस काम में

---

[1] पोरस झेलम के पार पंजाब में राज्य करता था।

अपर बलशाली नृपति
फँसता भला क्यों दाम में ?

[६]

वह वीरता, ध्रुव वीरता
का एक-मात्र स्तम्भ था
अपनी प्रजा का प्राण था,
सम्मान था, अवलम्ब था

वह प्रजाशासक, धीरवर था,
शूर, न्याय-प्रिय सदा
कैसे भला स्वीकार करता
करदता की आपदा

[७]

आम्भि नृप के दाँत खट्टे
कर दिये उस वीर ने
विजयकलिका पर तुषारा-
घात डाला धीर ने

कामना कर्पूर सम सब
भस्मसात् हुई वहाँ

हार कर लौटा, लिया
आश्रय कुटिलता का महा

[८]

उस समय था भाग्य रवि
उत्तुंग भारतवर्ष का
देखा न कोई रूप अवनति
का तथा अपकर्ष का

सब नृपति आत्माधीन थे
परतंत्रता का ह्रास था
सानन्द थे, सम्पन्न थे,
आदर्श गुण का वास था

[९]

दुर्भाग्य से दुर्धर्ष भूपति
अलचेन्द्र सदल चढा
ईरान, अथ गान्धार जनपद
जीतता आगे बढा

काम्बोज सारा पददलित कर
वास तक्षशिला किया

सादर सुपूजित आम्भि से
होकर वशी उसको किया

[१०]

दिग्विजय की कामना से
अलक्षेन्द्र स्वशक्ति ले
पौरुष नृपति पर चढ़ चला
नव दर्प की अनुरक्ति ले
पौरुष नृपति ने भी इधर
चल मोरचा बढ़ कर लिया
रोका वितस्ता तीर आगत
शत्रु से संगर किया

[११]

सब अरि हताश हुए तभी,
उत्साह ढीले पड़ गये
संरुद्ध गति सम सर्प से
मुख नेत्र पीले पड गये
कौटिल्य भेद विधान में
नृप आम्भि ने की दुष्टता

पाकर सुअवसर भेद दे
की द्रोह की परिपुष्टता

[१२]

इस भाँति तक्षशिलाधिपति ने
बीज देश-द्रोह का
बोया, किया परिपुष्ट, डाला
खाद मिथ्या-मोह का
आप होकर दास निखिल-
प्रान्त को परतन्त्र कर
स्वातन्त्र्य को दूषित किया
सब देश में षड्यंत्र कर

[१३]

होकर अनादृत इधर भूपति
मगध के नवनंद से
प्रति घात प्रबलेच्छा प्रताडित
चन्द्रगुप्त सुचन्द से
आचार्य श्री चाणक्य के
अनुरोध से आये वहाँ

विश्व-विजयी नृप सिकन्दर
का विभव बिखरा जहाँ

[१४]

यूनानियों के जगद्विजयी
खड्ग कौशल देखते
धनुर्विद्या, व्यूह-रचना
जहाँ अनुपम कृत्य थे

जिसने अलौकिक वीरता से
पर्शिया के राज्य की
भूति बिखराई, हिला दी
सब जड़ें साम्राज्य की

[१५]

मकदूनिया में राज्य-लक्ष्मी
दी बिठा निज शक्ति से
सभी राष्ट्रों की प्रजा को
वश किया अनुरक्ति से

[1]"फणिशिखाऽथ [2]तुरुष्क
[3]विविधालवणिका, [4]अर्कोश्रया"
आदि प्रान्तों को सहज
यूनानियों ने ले लिया

[१६]

जिसने अजेयों को विजय कर
त्रस्त की समधिक धरा
जिसके प्रबल सेनानियों में
तडित की गति सी त्वरा

जिसके प्रचंड-क्रोध से
सब काँपते नृप थे बली
जिसने मचा दी जगत समधिक
भाग में अति खलबली

नोट—ये वे देश हैं जिनको सिकन्दर ने अपने आक्रमण काल में जीता था।

[1]फीनिशिया गान्धार का प्रदेश

[2]इजिप्ट।

[3]बेबीलोनिया।

[4]आर्कोशिया।

[१७]

उस बार विजयी फिलिप-सुत
का साथ सुख लेते हुए
आम्भि के कुत्सित कुचक्रों
पर नज़र देते हुए

देखा प्रचंड-प्रौढ पौरुष
का प्रखर संग्राम भी
कुटिलता थी, था न केवल
वीरता का नाम ही

[१८]

छिप कर स्वयं सारी समर की
कलाएँ सीखी वहाँ
था दक्ष तक्षशिलाधिपति
दासत्व के क्रय में जहाँ

है एक ही यह शुभ्र यश में
कालिमा की रेख-सी
यह स्वच्छ तक्षशिला नगर
की अघभरी अवरेख-सी

[१६]

स्वातंत्र्य रक्षा के लिये
ही देश आपस में लडे
स्वातंत्र्य रक्षा ध्येय में
होते सभी मिलकर खड़े

यद्यपि न थी सामर्थ्य उसमें
युद्ध के आह्वान की
यदपि आशंका पराजय की
बनी धन जान की

[२०]

किन्तु था कर्तव्य उसका
नृपति पौरुष को मना
एक हो लडते तथा
निज शक्ति को देते जना

प्रतिकूल इसके इस नृपाधम
ने दिया सब भेद था
पाया न कब भारत मही ने
गृह-कलह का खेद था

[२१]

यद्यपि सिकन्दर ने बनाया
उसे क्षत्रप प्रान्त का
झेलम नदी से सिन्ध तक
अविखंड भूप दिशान्त का

पाकर सुविस्तृत राज्य
सीमाएँ नगर वैभव बढा
किन्तु रह सकता कहाँ तक
पाप से पूरित घड़ा?

[२२]

आमूल तक्षशिलाधिपति
की मगध ने दी जड़ हिला
स्वातंत्र्य विक्रय का यही
नृप आम्भि को था फल मिला

विद्रोह करके शान्त
लेते प्रान्त अरियों से सभी
चन्द्रगुप्त महान ने ली
छीन तक्षशिला तभी

[२३]

सीमान्त वर्ती प्रान्त की
थी राजधानी यह बनी
चमकी निखिल भूभाग पर
बन मौर्य हीरक की कनी

काया पलट सी हो गई
इस देश में फिर धर्म की
विश्वास ने ली साँस
सुख की, प्रजा ने सत्कर्म की

[२४]

ऋद्धियों में वृद्धि थी,
जन वृन्द में षोडश कला
नर समूहों में प्रवाहित थी
न नभ में चंचला

फिर हुई प्रारम्भ चर्चा वेद,
शास्त्र पुराण की
सद्धर्म की सत्कर्म की,
विद्या कला विज्ञान की

[२५]

भेजे गये जो मगध से
शासक महा मतिमान थे
विश्रुत, विवेकी, प्रजा हितरत,
रण निपुण बलवान थे

सब सहचरों का ध्येय यह था
प्रान्त सुख सम्पन्न हो
आज्ञा सफल सम्राट् की हो,
देश जन अविपन्न हों

[२६]

आचार्य वर चाणक्य की ही,
राजनीति विशेष थी
समयानुकूल, सुचारु चालित,
हितमयी निःशेष थी

शासन-व्यवस्था प्रजा-सम्मत,
न्याय-नीति प्रशस्त थी
वर्ण धर्माचरण, नृप की
नीति अति विश्वस्त थी

[२७]

सन्नियंत्रित, हितमयी थी,
सैन्य शक्ति प्रचण्ड थी
साम-दाम-विभूषिता थी
दण्ड्य को उद्दण्ड थी

दुर्ग-रक्षण, अर्थ-अर्जन,
कर नियंत्रण काम थे
धर्मपूर्वक प्रजा-रक्षण
दुष्ट-दण्ड, निकाम थे

[२८]

निज दास विक्रय कपट पाटव,
पर-स्त्री व्यभिचार का
सब नाम को ही रहा अवगुण
देश में अविचार का

नृप-दण्ड-नीति प्रचण्ड थी,
अन्यायियों को क्रूर थी
इस विधि सुखी थी सब
प्रजा सुख शान्ति से भरपूर थी

[२९]

चौबीस वर्षों तक मगध
सम्राट् ने शासन किया
नृप मौर्य कुल की कीर्ति का
आलोक जग में भर दिया

फिर बिन्दुसार सुपुत्र ही
साम्राज्य अधिकारी बना
आचार्यवर की नीति पर
चल राज्य सुख भोगा घना

[३०]

सारे प्रदेशों से बुलाई थी
गई सेना वहाँ
मगधेश के अभिषेक की
आयोजना होती जहाँ

बहुत दिवसों तक रहा
उत्सव नृपति अभिषेक का
सम्मान से सत्कार देखा
देश ने प्रत्येक का

[३१]

उत्तरा-पथ राजधानी
पुनः तक्षशिला बनी
कीर्ति कुञ्जरिणी मगध
सम्राट् की शोभासनी

राज्य-दण्ड सँभालते ही
मगध के सम्राट् के
विजय-लक्ष्मी कामना ने
किये वश अरि काट के

[३२]

षोडश नरेशों को किया
वश में स्वराज्यासीन हो
वशवर्तिता स्वीकार की
सब ने अकिंचन दीन हो

दक्षिण विजय में निखिल ही
सम्राट् सेनाएँ लगीं
रण-दुन्दुभी के नाद में
भू की दिशाएँ थीं पगीं

[३३]

इस बीच में कुछ उत्तरा-
पथ प्रान्त उद्धत हो गया
विद्रोह के स्फुलिंग में
उत्सर्ग देने को नया
मगध प्रतिनिधि को
तिरस्कृत पद-च्युत था कर दिया
विद्रोह की दावाग्नि में
सुख शुद्ध स्वाहा कर दिया

[३४]

राज्य सौध समग्र ही
उस देश के हथिया लिये
कोष, अस्त्रागार, न्यायालय
जला स्वाहा किये
निरंकुशता उपद्रव का
दौर दौरा था चला
अन्याय, अत्याचार ने
सुख शान्ति का घोटा गला

[३५]

पाठशालाएँ हुईं
विध्वस्त कुण्ठित शास्त्र थे
हिंसापरायण नीतियों ने
लिये उद्धत अस्त्र थे
उद्दण्डता की स्थापना मे
लग्न सारे वीर थे
बाहु-युद्ध विशुद्ध में
उत्सुक बने मति-धीर थे

[३६]

रुद्र रण-चण्डी हुई
परितृप्त शोणित-धार से
करुण क्रन्दन, चीत्कार—
ध्वनि उठी परिवार से
चहुँ ओर खड्ग-ध्वनि
विपदों में सुनाई दे रही
न्यायालयों की नींव मे
कटुता दिखाई दे रही

[३७]

सब जगह हा हाकार था
कारुण्य का उद्गार था
अविवेक था, अविचार था,
अन्याय का विस्तार था

अमरावती जो थी बनी
वह भस्मसात् हुई भली
अलकापुरी-सी तक्षनगरी
द्रोह-दावा में जली

[३८]

विद्रोहियों द्वारा सभी जन
राज्य के मारे गये
कुछ भाग निकले शत्रु-
पंजों से न संहारे गये

इस तरह बहु काल तक
विद्रोह दावानल जली
शान्ति सागर की तरङ्गों में
उठी अति तल-मली

[३६]

मगध प्रतिनिधि से
प्रजाजन हो गये अति रुष्ट थे
दक्षिण विजय से निरंकुश
सेवक बने जो दुष्ट थे

राज्य-मर्यादा न थी
शासक निरंकुश हो गये
अविवेक के उत्थान से
सब गुण वहीं पर सो गये

[४०]

उप-कण्ठ में औद्धत्य के
निन्दा-कुसुम का हार था
क्रूरता के तरु फलों का
मृत्यु-मय उपहार था

विद्रोह का संवाद
दक्षिण विजय में नृप ने सुना
क्रोध से भौंहें तनीं
कहने लगे कुछ गुनगुना

[४१]

आचार्य श्री चाणक्य से
फिर बुला कर की मंत्रणा
परिस्थिति हो शान्त
कैसे द्रोह नृप मन यंत्रणा

आचार्य ने देते हुए
यों परामर्श कहा तभी
हे देव, प्रतिनिधि राज्य का
कर भेजिये 'सुषिमा'[1] अभी

[४२]

राजनीति, समाज नय,
नृप दण्ड नीति-ज्ञान दे
युवराज सुषिमा को वहाँ
भेजा अधिक सम्मान दे

सेना-सहित रथ, अश्व,
गज, समुचित दिये उपहार थे

---

[1] 'सुषिमा' विन्दुसार का वडा लडका अशोक का भाई यह विद्रोह के समय तक्षशिला का स्वामी वनाया गया।

विग्रह, दमन, नय, संधि
जिसके साथ ये परिवार थे

[४३]

युवराज रथ निर्घोष, सेना,
के प्रखर वातूल से
उदधि उन्नत वीचि से
शठ नवे पाकर कूल से

बल कीर्ति रवि छवि से भरे
जो सैन्य युत युवराज थे
अति क्रान्ति तम को कीलते
जो थे, पवन से बाजि थे

[४४]

उस राजधानी से जभी कुछ,
दूर सेना रह गई
सब शत्रुता पुरवासियों के,
हृदय से छन बह गई

पुरवासियों ने मार्ग में बढ,
हृदय से स्वागत किया

जन भक्ति श्रद्धा ने यशोमय,
गान-सा शाश्वत किया

[४५]

सब विनय जागृत हो उठा
जो सूत्र सभ्य समाज का
सुख शान्ति ने ली साँस गाकर
यश, मगध युवराज का

सब आत्मपक्ष समक्ष रखते,
नागरिक कहने लगे
थे भृत्य स्वेच्छा स्वार्थ सरिता,
में निपट बहने लगे

[४६]

अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न,
नियंत्रण कार्य था
उत्कोच सत्पथ त्याग जब था,
द्रोह फिर अनिवार्य था

अब हम प्रजागण बद्ध परिकर
कर रहे यह प्रार्थना

स्वीकार करिये देव हम सब,
की यही अभ्यर्थना।

[४७]

हमको सनाथित कीजिये
प्रभु, भृत्य कर अपनाइये
फिर राजधानी में पुराने
मगध-गुण-गण गाइये

सादर सुपूजित हो प्रजा की
भेंट को स्वीकृत किया
अति अभय पद युवराज ने
सस्मित, प्रजा को दे दिया

[४८]

बोले प्रजागण अब उपद्रव,
शान्त होना चाहिये
कर्तव्य पालन ही हमारा,
ध्येय होना चाहिये

शठ ठानते हैं हठ दुराग्रह,
दुष्ट का यह काम है

न्याय-पथ पर डटे रहना ही,
सदा सुख-धाम है

[४९]

निज पुत्र सम सारी प्रजा
सम्राट को प्रिय है सदा
हित चारि पुत्रों से जनक
रहते रहित भय आपदा
यों कह वचन युवराज ने
रथ पुरी ओर बढा दिया
बन देवियों ने फूल बरसा कर
सतत स्वागत किया

[५०]

सुख-शान्ति सारे प्रान्त में
आनन्द बरसाने लगी
होकर प्रजा प्रकृतिस्थ जीवन
रागिणी गाने लगी
युवराज थे अधिराज यद्यपि
राजधानी के बने

रहते प्रजाहित न्याय पालन में
सतत ही अति सने

[५१]

परलोक चिन्ता मणि परम
रुचि हृदय में परमार्थ था
सद्धर्म ही ध्रुव ध्येय जीवन का
धवल पुरुषार्थ था

थीं दासिका, परिचारिकाएँ,
कामिनी, क्रीडा सभी
सब व्यर्थ सी असदर्थकारी
सुपिम के मन में जमी

[५२]

तप बुद्ध सी उद्‌बुद्ध थी
वैराग्य प्रज्ञा सामने
सब अनवरत एकान्त चिन्तित
था किया हृद्धाम ने

अपवर्ग की अन्वेषणा का
उपक्रम मिलता न था

ध्रुव सत्य की संतत समर्या का,
समय मिलता न था

[५३]

अति तीव्र व्रीडा तथ्यव्रत
पालन शिथिलता से हुई
जी उचट घटने सा लगा
उत्कट निराशा सी हुई
सब राजभृत्यों ने निरख रुख
राज का यों सर्वथा
अति प्रजा पीडन स्वार्थ साधन
की शुरू कर दी कथा

[५४]

सब प्रजा पर उद्दण्डता का,
कठिनतर आरोप था
संत्रास द्वारा अर्थ अर्जन
अकारण कटु कोप था
दण्ड-नीति प्रधान थी
उत्थानिका जो क्रान्ति की

युवराज औदासीन्य में
अन्याय की उद्भ्रान्ति थी

[५५]

उठती बुरी थी भावनाएँ
प्रजा के हृद्धाम में
उत्क्रान्ति की संभावना थी
नगर देश-ग्राम में

बना गृह उत्कोच, उत्पीड़न, '
प्रजा जन वित्रास का
हा, पुनः तक्षशिला नगर ने
दृश्य देखा ह्रास का

[५६]

मार्तण्ड मण्डल उग्रता सी
क्रान्ति भीषण हो चली
एकत्र शत्रु उदग्रता से
कीर्त्ति कुञ्जरिणी दली

युवराज में फिर राज्य-
रक्षा की न क्षमता रह गई

विद्रोह विप्लव में सुखों की
क्षीण धारा बह गई

[५७]

युवराज क्रीड़ा पुत्तली से
राजधानी में बने
फिर संकट-स्थिति विकटता में
वे, उठे, डूबे, सने

वह मार्ग कण्टक पूर्ण भय
भीषण उपद्रव से हुआ
वञ्चक प्रपञ्ची शासकों से
प्रजा का परिभव हुआ

[५८]

आग्नेय भूविस्फोट सम नय के
तटों को तोड़ती
पद दलित रुद्धा सर्पिणी सी
प्रजा आई दौड़ती

उन्मादिनी वन क्रुद्ध केसरिणी
रण-ध्वनि कर रही

काल सम हुंकार कर सब
दिशा में भ्रम भर रही

[५९]

जनपद समुत्कट ऊर्मिमाला
उदधि सम उच्छल रहा
कुछ भी न करते बन पडा
तब, राज्य प्रतिनिधि से वहाँ
मन हार सब परिवार ले
अधिकार सारा छोड़ के
विद्रोह दावा में दहकते
राज्य से मुख मोड के

[६०]

झट अतिअतर्कित कण्टकित
पथ गहन कानन पार हो
श्रम खेद भर मगधाधिपति के
वे निकट पहुँचे अहो
सब यथामति संवाद दुखमय
कह दिया उस देश का

जैसे बना वह क्षेत्र था
सुख शान्ति से विद्वेष का

[६१]

रति कामिनी कल कण्ठ कोकिल
की, कल-ध्वनि तान में
कमनीय कान्ता निकेतन-मय
मीनकेतन बाण में

साम्राज्य, शासन, प्रणय
परिजन में, न जीवन शान्ति है
है मोह मदिरा महा विषमय,
विषमतर यह भ्रान्ति है

[६२]

विश्व माया का कटु-स्मय
सा भरा उल्लास है
तथ्य पर पर्दा पड़ा है
शान्ति का आभास है

दृश्य जीवन शुक्ति मुक्ता
ज्ञान सा भ्रम पूर्ण है

विश्व धमनी में प्रवाहित
रक्त विन्दु अपूर्ण है

[६३]

हूँ असंख्य अपूर्ण, चेतन
कणों का एकांश में
विश्व घन के वाष्प कण का
एक जीवन अंश में

योग्यता, गम्भीरता, क्षमता
तथा महनीयता
न्याय प्रियता, धीरता,
कर्तव्य विश्वसनीयता

[६४]

मुझमें न है लवलेश भी हूँ
देव मैं अवगुण भरा
क्षन्तव्य परिहर्त्तव्य हूँ
मुझसे कलंकित है धरा

यों कह सुषिम चुप हो रहे
निर्विषय से निज ध्यान में

कहने लगे आश्चर्य से
बातें सभासद् कान में

[६५]

परिणाम समझे ही बिना
सम्बन्ध अपना तोडता
है मूर्ख यह युवराज अधिगत
राज को यों छोड़ता
शुभ स्वर्ण मणि संयोग में,
वैराग्य का मल छा गया
कहने लगा यों दूसरा
अब नव तथागत आ गया

[६६]

तब तीसरा गम्भीर स्वर से
यों वचन कहने लगा
अति धन्य है युवराज
जो वैराग्य प्रज्ञा में रँगा
कुछ सोचते से खिन्न मन
सम्राट् ने तब यों कहा

कर्तव्यहीन कुलारि हे
युवराज, क्यों पद खो रहा

[६७]

निज ज्ञान से अज्ञान तुमने
द्रोह दावा दी बढ़ा
शासन अपाटव से जय-श्री
को दिया बलि सा चढा
कापुरुष सम कर्तव्य पथ से
भ्रष्ट होकर आ गये
संसार त्याग विराग के
उपदेश हो देते नये

[६८]

आचार्य, सुषिम अयोग्य है
भूभार धारण दृष्टि से
हा शोक पुत्र अशोक है
रक्षक दुरित जल वृष्टि से
अब राजधानी उत्तरापथ
विपथ में है पड गई

वे चन्द्रगुप्त महान का प्रति-
विम्ब देख सराहते

[७१]

देखा भविष्योज्ज्वल महा निज
ध्यान से युवराज का
होगा अलौकिक यह मुकुट
मणि नृपति राज समाज का
दे दी अनुज्ञा शीघ्र इसको
भेज देना चाहिये
शासन कला की योग्यता
भी देख लेना चाहिये

[७२]

सम्राट् ने सुत को बुला
आदेश का भाजन किया
अब पुत्र सारा भार तुमको
उत्तरापथ का दिया
जाओ करो प्रस्थान सत्वर
तक्ष नगरी के लिये

कल सज्ज हो सीमान्त-वर्ती
प्रान्त रक्षा के लिये

[७३]

काया पलट जो की महा
मतिमान पुत्र अशोक ने
वह युगों तक गाई यशो-
गाथा निखिल भूलोक ने

आनन्द मन्दाकिनि वहा दी
निखिल जन कल्याण में
स्वर्लोक प्रांजल अछूती
छवि झलकती अब ध्यान में

[७४]

अशोक पुष्पावलि से सुखारी
अशोक भूपावृत पुंस नारी
अशोक आशा जन शोक हारी
अशोक था देव धरा विहारी

पञ्चम स्तर

[१]

लेकर नृप आदेश, मातृ-
मन्दिर में आये
कहा पिता संदेश,
विनय से शीश झुकाये

[२]

सादर सस्मित वदन
दौड चूमा माता ने
सूँघा धवल ललाट
पुत्र का निर्मलता ने

[३]

कुंचित मेचक केश
फेर कर हाथ सँभाले

देकर सत उपदेश
नीति के साधन वाले

[४]

कहा सुपुत्र अशोक,
मुझे यह निश्चय ही है
तक्षशिला निःशोक
भाग्य मार्तण्ड मही है

[५]

उद्धतपुर के लोग
तुम्हें ही नृप मानेंगे
नय मय शासन भोग
अलौकिक नृप जानेंगे

[६]

समय समीक्षा पुत्र
सदा ही करते रहना
प्रजा मान निज पुत्र
दुःख दल हरते रहना

[७]

उन्नति का आलोक
देखने देना सब को
भरना ज्ञान विवेक
धर्म धन देना सब को

[८]

करना सब कुछ सोच
भृत्य विश्वास् रखना
हो सतर्क गम्भीर
गुप्त बन प्रजा परखना

[९]

होना मत अनिवार्य
कार्य-वश कभी प्रमादी
क्रोध, शोक, परिताप,
पाप-वश मिथ्यावादी

[१०]

राज्यश्री के दास, प्रशंसा-
प्रिय मत होना

चाटुकारिता सदा तीव्र
विष-वश मत होना

[११]

रखना भृत्य समीप
सदा निष्पक्ष दक्ष हो
रक्षित रखना कक्ष
सदा से जो समक्ष हों

[१२]

इस प्रकार नृप-नीति
रीतिमय शिक्षा लेकर
चले कुमार अशोक
प्रसन्नानन मन सत्वर

[१३]

आये शयनागार
हृदय में सीख समेटे
लगे भूलने झटिति
नींद झूले में लेटे

[१४]

हुआ प्रभात पुनीत
उषा छवि छमकी आ के
दिया दिव्य संदेश
भाग्य-मार्तंड जगा के

[१५]

शीतल मन्द समीर
लगा भरने नव जीवन
प्रकृति प्रफुल्लित हुई
मंजु कुंजें मनरंजन

[१६]

फूलों ने ली साँस
नेत्र खोले मुसका कर
पवन विकम्पित लगे
नाचने गुन गुन गाकर

[१७]

मुक्ता गुच्छ सा तुहिन
पत्रों के आसन पर

मरकत मणि की भ्रान्ति
दे रहा था अति सुन्दर

[१८]

धुँधली स्मृति से निपट
नभो नक्षत्र नसाये
मधुर मिलन सम सूर्य
उस समय हँसते आये

[१९]

किये नित्य के कृत्य
भृत्य विश्वस्त बुलाये
होने को सन्नद्ध उन्हें
कह वचन सुनाये

[२०]

यथा समय संवाद सुना
सम्मत अति नीका
भूपति आज्ञापत्र तथा
आशी जननी का

[२१]

हो सुत परिकर बद्ध
शीघ्र निज साधन लेकर
करो वहाँ प्रस्थान
राज्य आदेश मुख्यतर

[२२]

गज, रथ, पत्ति, तुरंगम
सेना सेना ही थी
कहीं न था उल्लेख
तथा कुछ संख्या ही थी

[२३]

गरल गर्भ, गुरुसुधा
समंचित पत्र नृपति का
प्रत्युत्तर अस्पष्ट क्रूरता
बिम्ब कुमति का

[२४]

कुण्ठित कातर बने घने
युवराज मुकुट थे

द्वन्द्व-ध्वनि कर उठे
सभी सन्देह निपट थे

[२५]

भूप उपेक्षा मूर्ति
हुई उद्भूत वहाँ पर
परिलक्षित हो घृणा
हुई अपरूप भयंकर

[२६]

जड़ित, खचित, उत्क्रन्त
बने चित्रित से पढ़कर
नय का निर्णय कठिन कृत्य
थे कठिन कठिन-तर

[२७]

साधन शून्य प्रयाण
विपत्ति बुलाना ही है
लंघन नृपति प्रमाण
मृत्यु मुख जाना ही है

[२८]

कौन मार्ग अवलम्ब करूँ
अम्बे, बतला दो
सद्यः सस्मित खड़ी हुई
माँ शोक पंक धो

[२९]

क्यों मलीन परिवेष वत्स,
निःशेष हुआ है
क्यों यह नक्षत्रेश
क्षपाकर दीन हुआ है

[३०]

कारण क्या है शेष,
शोक रेखा ने देखा
मण्डित पुण्य अशेष,
उठी क्यों अघ की लेखा

[३१]

चिन्ता संकुल चित्त
अकारण देख रही हूँ

क्या अनिवार्य निमित्त
उपस्थित लेख रही हूँ

[३२]

संभ्रम किया प्रणाम
देख जननी पादों को
कहा त्राहि माँ त्राहि
पुत्र के अपराधों को

[३३]

गुरुतर भार असीम
पिता ने सौंप दिया है
सेना[1] शून्य प्रयाण
निरस्त्रीकरण किया है

[३४]

उद्धत अतिशय तक्ष-
शिला सागर मथना है

---

[1] अशोक को तक्षशिला भेजते समय सम्राट् ने उसे धन तथा सेना नहीं दी थी। दिव्यावदान कल्पलता
Edited by Cowell and Heil, p. 371.

साधन जन बल हीन
विजय दुर्घट घटना है

[३५]

सेना ही है तेज उसी से
रहित बना हूँ
क्रिया कलाप-व्यर्थ हुए
कर्तव्य सना हूँ

[३६]

पढ कर आज्ञापत्र हुआ
चिन्ताकुल मन है
क्या है अब कर्तव्य
ग्रस्त माता यह जन है

[३७]

होकर पट चित्रस्थ
निपट अस्वस्थ खिन्न हूँ
हूँ कर्तव्य विमूढ, क्लान्त
उद्भ्रान्त स्विन्न हूँ

[३८]

ढारस का रस पिला
समुत्साहित सा करके
उपदेशामृत तृप्त किया
नवजीवन भर के

[३९]

सुत-क्लैव्य, कायरता को
मत कण्ठ लगाना
क्षत्रिय सुत को उचित
नहीं मालिन्य दिखाना

[४०]

सुख दुख में समभाव
भावना जीवन मधु है
दुःखोदधि की तरल
तरंगों में सुख विधु है

[४१]

सुसाम्राज्य तृण भार समझ
क्षत्रिय बनते हैं

पाल सतत ध्रुव धर्म
धीर निज यश तनते हैं

[४२]

बिखरी निरख विपत्ति
चूमते हृदय लगाते
आर्त-ध्वनि सुन त्याग
विभव निज शीस कटाते

[४३]

विपद वह्नि में पिघल
कीर्ति काञ्चन चमकाते
जीवन कर उत्सर्ग
स्वर्ग सुख सतत उठाते

[४४]

उठो त्याग मालिन्य
कीर्ति कुञ्जर पर बैठो
दैन्य नदी कर पार
कीर्ति कानन में पैठो

[४५]

वाहु अस्त्र है तेज
निरतिशय चमू तुम्हारी
न्याय दण्ड है बुद्धि
विजयिनी ध्वजा तुम्हारी

[४६]

सिंहासन कर्तव्य,
दूत नय, प्रतिभा चर है
शरणागत है विश्व
सदा जो ऐसा नर है

[४७]

पातक पुंज पहाड़
स्वयं सारे पिस जाते
जो विवेक की कठिन
कसौटी पर घिस जाते

[४८]

यह नगण्य सा प्रान्त
क्रान्ति की शिखा उड़ाता

दीखेगा तब दृष्टि
वृष्टि से हृदय जुड़ाता

[४९]

रजः पुंज सब वृष्टि
प्रबल से दब जावेगा
मार्तण्ड सम उग्र दण्ड
से भय खावेगा

[५०]

जाओ, मेरे हृदय
खण्ड, नेत्रों के तारे
चमक रहे हैं अत्युज्ज्वल
तव भाग्य सितारे

[५१]

हे भविष्य के पूर्ण इन्दु,
सानन्द सजग हो
हो कमनीय कठोर विघ्न,
मंगलमय मग हो

[५२]

रोगी को सुख नींद
मृतक को सुधा सार सा
डूब रहे को तृणालम्ब,
दुख में विचार सा

[५३]

शौर्य वह्नि से चमक उठा
युवराज प्रखर-तर
अत्युत्कट उद्दीप्त हुआ
मुख साहस से भर

[५४]

लिये संग निज भृत्य
पिता से आज्ञा पाई
तक्षशिला के प्रथम
वास में रात बिताई

[५५]

बने प्रान्त पथ मधुर
हुए दृक्पथ वन कानन

शील, विनय सम्पन्न
झुके आ दीन प्रजाजन

[५६]

परिमल लिये समीर
शान्ति हरता पथ आके
पुष्प संपुटित नीर
भेटते शीस झुका के

[५७]

अलिकुल संकुल कुञ्ज
कीर, केकी, कोकिल कल
स्वागत गाते मधुर
मनोहर रव कर निर्मल

[५८]

स्वच्छच्छवि-मय वृक्ष
सघन छाया फैलाते
पंकिल पग मृग वृन्द
जलाशय पन्थ बताते

[५९]

यद्यपि थे युवराज
चमू चामर से हीने
लोकोत्तर गुण वृन्द
लगे अमृत रस पीने

[६०]

थी अशोक की शक्ति
प्रचण्ड भुशुण्डी जैसी
शील सखा, सौजन्य
सैन्य सागरिका ऐसी

[६१]

सेनापति था धर्म,
बन्दिजन ख्याति पताका
था उत्साह तुरंग,
क्रोध कटु काण्ड धरा का

[६२]

धैर्य-ध्रुव थे द्विरद,
विरद सुषमा आनन की

गुण गौरव समलंकृत थी
शोभा उस जन की

[६३]

दया दण्ड, सुविवेक
अनेक स्यन्दन सुन्दर
इस प्रकार युवराज,
बढे जाते दिक् उत्तर

[६४]

यथा समय संवाद
निखिल नगरी ने पाया
क्षुब्धोदधि में प्रबल
प्रकम्पन झोका आया

[६५]

है अशोक अत्युग्र कथा
यह प्रति मुख पर थी
अत्युत्कट उद्दाम पितामह
कान्ति अपर सी

[६६]

प्रजाजनों ने किया
परस्पर निश्चय कह के
सुविज्ञ नहीं यह भूप
कृत्य से जो थे बहके

[६७]

बिन्दुसार नृपराज
उग्रता से भय खाते
कपट कलेवर इन्हें
निरख सारे भग जाते

[६८]

क्षमा, दया की मूर्ति,
न्याय के नय से क्रूरे
विप्लव को हैं रुद्र,
नीति नय पथ में पूरे

[६९]

सादर शिरसा वन्द्य
अनिन्द्य अशोक तुम्हारे

गुण सागर महाराज
पधारे नगर हमारे

[७०]

स्वागत बढ़ कर किया
प्रजा ने तक्षशिला की
नगरी ने श्रृंगार
सुरुचि से पूर्ण कला की

[७१]

अमरावति की अपर
कान्ति उभरी हाटों में
विजय दुन्दुभी बजी
प्रान्त के पुर बाटों में

[७२]

चमक उठी चंचला
अपर भू पर लसिता सी
दीप्तिमयी हो उठी
झिलमिलाती वनिता सी

[७३]

वार वधू सी विभ्रम
लीलामयी पुरी थी
आनन्दोत्सव सजी
सुखद साम्राज्य धुरी थी

[७४]

भ्रान्तिमयी थी क्रान्ति
शान्ति की सागरिका सी
लोल विलासमयी
रमणी सी नागरिका सी

[७५]

अंगुलि गण्य चरों से
सेवित महाराज थे
नगरी के अधिराज बने
वे सुर समाज से

[७६]

कुञ्जर पुंज सजे
कादम्बिनि से अम्बर के

गण्ड शुण्ड चित्रित,
मद भूले नाग अपर से

[७७]

तुरग त्वरा से युक्त
खुरों से खोद रहे थे
कठिन धरा में भूप
कान्ति को शोध रहे थे

[७८]

पांसु पवन से मिली
गगन को घेर रही थी
रवि रथ खोया
जान अवाची हेर रही थी

[७९]

पा सुर दुर्लभ मान
सभागत प्रजाजनों से
परंपरागत सभ्य
सभागत विज्ञजनों से

[८०]

सत्य भारती हुई
वस्तुतः माता की है
समझा माता निखिल
विश्व सुखदाता ही है

[८१]

शतशः किये प्रणाम
मनोमय मूर्ति बनाकर
मातृ देव होना सत
शिक्षा सार सुखाकर

[८२]

वाद्य गीत के साथ
नगर युवराज पधारे
नेत्रों ने जीवन फल
पाया आज हमारे

[८३]

कहते नहीं अघाते थे
सब नगर निवासी,

हुए आत्म विस्मृति में
तन्मय मान विलासी

[८४]

यथा नीति कर राज्य,
हस्तगत देखा भाला
जटिल समस्या-युक्त
पन्थ हल किया निराला

[८५]

नव विधान नव नीति
नई की राज्य-प्रणाली
नई रीति से सजी
संगठित चमू निराली

[८६]

न्यायालय के नये ढंग
से भाग बनाये
विविध विभागों में
न एक अधिकार चलाये

[८७]

शासन-सूत्र कठोर
क्रूरता न्याय कला में
पक्षपात का पैर न,
पैठा उस अचला में

[८८]

पशु-वध करके बन्द
अहिंसा सूत्र बनाये
मृगया के कान्तार
तपः परिवार सजाये

[८९]

व्यापारोन्नति ढंग
निराले ढूँढ़ निकाले
आयात-ग्रह भाग बने
चुंगी घरवाले

[९०]

व्यापारार्थ महार्घ
वस्तु जो बाहर जातीं

राज्य-तंत्र से सभी
सुभीते थीं वे पातीं

[९१]

स्वास्थ्य - समितियाँ
प्रजा हितों के अर्थ बनी थीं
राज्य-नियंत्रण में न
कहीं भी तनातनी थी

[९२]

सारे ही व्यापार
सचाई पर आश्रित थे
रंचमात्र भी नहीं
प्रपंच कहीं मिश्रित थे

[९३]

विद्या, धन का केन्द्र
नगर गुणि-गण-मय नीका
समधिष्ठित गुरु-वृन्द
तिलक सा सभ्य मही का

[६४]

गुरुजन गौरव चमक
रहा था दिग्दिगन्त में
निखिल शास्त्र निष्णात
निकलते छात्र अन्त में

[६५]

था विद्या व्यासंग
शूद्र सम हीन नरों में
धनुर्वेद कृतकार्य
हुआ नरवीर करों में

[६६]

चिन्ता तत्व विचार
दीन उपकार-क्रम था
सदा विवेक विहार
प्रकृति पर प्राप्त विजय था

[६७]

तक्षशिला अति उच्च
विश्वविद्यालय सुन्दर

थे संसार प्रसिद्ध जहाँ
आचार्य महत्तर

[९८]

काशी,[1] मिथिला,[2] मगध[3]
तथा कम्पिल्ल[4] देश के
कुरू,[5] विदेह,[6] वङ्गाङ्ग,[7]
अवन्ती[8] पुर अशेष के

[९९]

मत्स्य,[9] चेदि,[10] काम्बोज,[11]
कुशीनर,[12] चोल[13] राष्ट्र के
केरल,[14] पाण्ड्य,[15] कलिङ्ग,[16]
आन्ध्र,[17] लंका,[18] सुराष्ट्र[19] के

[१००]

रूप नाथ, काश्मीर तथा
वाल्हीक देश के

नोट—देशनामों का उल्लेख जातकों में पाया जाता है।

[1] The Jātakās (Cowell) V p 127, 227, IV p 24 V p 66, 227, 127 V p 246 V II, 27 V II, 251 V III p 52, IV p 198

ईरानार्काश्रया आदि
भू के अशेष के

[१०१]

दिग्दिगन्त से छात्र सभी
वर्णों के आते
गुरुकुल में कर वास
विनय से विद्या पाते

[१०२]

थे अनेक ही छात्र विषय
अनुसार वहाँ पर
नियत शुल्क कर भेट
पंच दश वर्ष बिताकर

[१०३]

होता तब दीक्षान्त
सभी का संस्कार था
लेते आशीर्वाद सभी
का यह प्रकार था

[१०४]

होते जो असमर्थ शुल्क-
व्यय भार सहन में
करते विद्या प्राप्त
निशा में, सेवा दिन में

[१०५]

किन्तु उभय था जो न
वित्त से, सेवा से, वा
प्रतिज्ञात दीक्षान्त
छात्र कहलाते, अथवा

[१०६]

हो शिक्षा सम्पन्न
नियत कार्षापण देते
आशीर्वाद अनन्त तभी
गुरुवर से लेते

[१०७]

सांगत्रयी[1] समस्त तथा
अष्टादश विद्या

---

[1]सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयी कौटिल्य अर्थशास्त्र १, २ ।

शिल्प, तंत्र, विज्ञान,
मंत्र, प्रक्रियाऽनवद्या

[१०८]

धनुर्वेद[१] सम्पूर्ण तथाऽऽ-
युर्वेद प्रक्रिया
पशु भाषा विज्ञान,
तथा व्यवहार सत्क्रिया

[१०९]

राजनीति सम्पत्ति तथा
इतिहास शास्त्र के
न्याय, तर्क वेदान्त
तथा आचार शास्त्र के

[११०]

थे प्रसिद्ध आचार्य,
सभी कृत-विद्य सुपंडित

---

[१] Jātakās V II, 194, 195 V p 92, II p 60. V. p 32 V p 68 V IV p 283

पारदृश्व निर्भ्रान्त
तपस्वी ज्ञान विमंडित

[१११]

जिनके पद रज-पूत भूप
मणि मौलि मुकट थे
जगद्वन्द्य आचार्य
यहीं के गुरु उत्कट थे

[११२]

विनय, शील, सौजन्य,
श्रेष्ठ आचार, सभ्यता,
क्रिया-परायण, कुशल,
तथा व्यवहार-भव्यता

[११३]

क्षमा, दया-परिपूर्ण
गुणों से समलंकृत हो
पा अभीष्ट विज्ञान
तथा विद्या हृद्गत हो

[११४]

दिग्दिगन्त में छात्र
कीर्ति पट फहराते थे
गुरु निर्दिष्टादर्श
सृष्टि को दिखलाते थे

[११५]

फलतः यह सब कार्य
चारु रूपेण चलाया
तक्षशिला फिर केन्द्र
विश्वविद्या का भाया

[११६]

थे अशोक ही मुख्य
ख्याति में तक्षशिला की
वृद्धि हुई वाणिज्य
तथा विद्या विमला की

[११७]

आनन्द का मन्दार
फूला था सभी भू भाग में

आमोद की वीणा बजी
झंकार कर अनुराग में
प्रजा पंचम में विपंची
तान भर निःशोक की
सुख में मनाती विजय
नृप-मणि-मौलि भूप अशोक की

षष्ठ स्तर

[१]

विन्दुसार से राज्य लाभ
कर हुए अशोक महीश
बने मगध राकेश चकोरी,
चारु चक्षु पृथ्वीश

पूर्व वंग से हिन्दूकुश
तक हिम से लंका, स्याम
विजय-वैजयन्ती उडती थी,
राज्य-श्री अभिराम

[२]

एक कलिंग-विजय में नृप
की थी हिंसा अति क्रूर
प्रलयान्तक ताण्डव-सा करके
फैली दश दिक पूर

संख्यातीत हताहत सेना
का सकरुण आक्रन्द
चिन्ता पश्चात्ताप वह्नि से
जला रहा स्वच्छन्द

[३]

उत्कट नर-विनाश ने
नृप में बौद्ध-धर्म के भाव
दया अहिंसा विश्व-प्रीति
का पैदा किया झुकाव

गोतम-गुण-गरिमा से फैली
जग में अनुपम शान्ति
निरखी क्षुब्ध हृदय-मानव ने
जिसमें जीवन-कान्ति

[४]

विप्लव, युद्धकला उत्कटता
दबी दबा निज कोर
शोणिताक्त रण की धरणी पर
शान्ति उषामय भोर

बौद्ध-धर्म की धवल धरा में,
ध्वजा उड़ी चहुँ ओर
दया, धर्म से जड़ीभूत हो
उठा दिशान्त विभोर

[५]

ब्राह्मणत्व की यज्ञ-प्रक्रिया
को थी तामस रात
पुष्प अशोक सुवासित
गोतम धर्म समीर प्रभात

अभिनव-सा साम्राज्य
शान्ति का फूला फला महान
निखिल एशिया द्वीपों में
फैला रवि बुद्ध ज्ञान

[६]

विश्व-वाटिका के नर तरु पर
गोतम लता वितान
मंजु दया मंजरी सुमंडित
पण्डित जन कल्यान

बौद्ध-धर्म-विधु चमक रहा था
व्योम अशोक महान
थे नक्षत्र विहार-स्थल में
श्रमण महान सुजान

[७]

धर्म-स्तूप शिला-लेखों पर
लिखी गई नृप-नीति
धर्म तत्त्व के गूढ भाव से
नष्ट हुई भव-भीति

वर्ण-विधान प्रजा-संरक्षण
पुत्र-समान स्नेह
यश-शरीर से हुए भूप-
मणि विश्रुत और विदेह

[८]

अन्तियोक[1], तुरुमय[2] अन्तिकिनी[3],
मक[4], अलिसुन्दर[5] भूप
धर्म-शिष्य थे सब अशोक के
सभी प्रचारक रूप

थे अशोक के उग्र प्रशंसक
हितू सहायक मित्र
सभी धर्म-अनुशासनवर्ती
विनयी साधु पवित्र

[९]

अत्याग्रह से निज देशों में
करके धर्म प्रचार
भागी बने सुयश के किंवा
नृपति दया-आधार

---

[1] अन्तियोक सीरिया तथा पश्चिमी एशिया का यवन राजा।
[2] तुरुमय ईजिप्ट का स्वामी टालमी द्वितीय फिले डैल्फस।
[3] अन्तिकिनी मेसीडोनिया का राजा एन्टिगोनस गोन्ट्स।
[4] मक—साइरिनी का मालिक।
[5] अलिसुन्दर करिन्थ का शासक एलेक्सन्डर।

उग्र उदार, कठोर सुकोमल
बने धर्म-रत राज्य
थे अधिकार समान सभी के
सुखमय था साम्राज्य

[१०]

मगध-राज्य के अति सुदीर्घ
थे चार विशाल प्रान्त
तक्षशिला, उज्जयिनि, तुषाली,
हेमगिरी अति कान्त

था इन चार दृढ़-स्तम्भों
पर निर्भर राज्य महान
थे विभूति-मय सेना-सेवित
जनपद के कल्याण

[११]

थे कुणाल अन्यतम नृप
सुत तक्षशिला अधिराज
पिता समान यशस्वी न्यायी
हितू प्रजा सिरताज

शब्द अशोक प्रजा ने पाया
धर्मराज विशुद्ध
धर्मात्मा शुभ पालन
मन पोषक प्रजा प्रसिद्ध

[१२]

भागी उग्र कर्मी जिनसे थे
परम प्रबल सनाथ
भावुक क्लेश किन्तु त्याग-प्रिय
कांचन माना नाथ

राज्य सुमित्राश्रित दशरथ से
त्याग-प्रिय निर्व्याज
महा सेनयुत थे गिरीश से
शोभित सभ्य समाज

[१३]

सद्ज्ञानयुत थे सुरेश से
वन्दनीय अभिराम
अपर मीनकेतन से हर
अरि विरूपाक्ष उद्दाम

धाम धैर्य के, सूर्य सत्य के,
धारक धर्म विधान
महा प्राणयुत अपर सिन्धु से
सदाचार के प्राण

[१४]

दुःशासन को भीम रूप से
दिगुत्तरा अभिमन्यु
अपर प्रजापति दक्षभूप से,
पद्मा[१]-सुत अति धन्य

वही कुणाल उत्तरापथ के
प्रतिनिधि हुए नियुक्त
विद्या, विनय विवेक चतुर थे
काव्यकला संयुक्त

[१५]

तक्षशिला राज्य-श्री रत थे
प्रजा-परायण शान्त
पितृ-भक्ति की अभिनव
प्रतिमा, समदर्शी अक्लान्त

---

१ 'पद्मा' कुणाल की माता का नाम था।

इस विधि शासन सुख से
करते थे कुणाल युवराज
जिनके स्वच्छ न्याय से
धवलित था सब राज-समाज

[१६]

एक समय बैठे कुणाल थे
सिंहासन पर शान्त
परम यशस्वी अति तेजस्वी थे
सुधांशु-से कान्त

अति गम्भीर धीर धवलित
यश, श्वेत केश सचिवेश
नीर - क्षीर - विवेचन - निर्मल
बैठे पास जनेश

[१७]

थे अनेक संभ्रान्त प्रजाजन
सादर परिकर-बद्ध
जग-विश्रुत आचार्य, कला-विद,
कोविद नय-पथ-सिद्ध

परिचारक धारक सुदण्ड के
आज्ञा वाहक भृत्य
एक ओर बैठे थे क्षत्रिय
रुद्र रूप यम कृत्य

[१८]

अतिशय दारुण रण जिनको
था लीला कृत्य महान
वृन्दारक-सेवित सुरेश से
थे कुणाल मतिमान

धर्म-प्रसंग कभी उठता था
कभी कला पर वाद
चलती साहित्यिक चर्चा थी
परिषद में निर्बाध

[१९]

प्रतिभाशील सभासद अपना
दिखलाते पाण्डित्य
शास्त्र-सुधारस पान कराना,
दैनिक जिनका कृत्य

सेनापति संगर-रस-सागर
ओजस्वी अति धीर
श्मश्रु तान कर उत्तर देते
घनरव-से गम्भीर

[२०]

थे युवराज शान्त सागर-से
बैठे वहाँ कुणाल
जिनकी भ्रूभंगी पर बलि था
सारा प्रान्त विशाल

इसी बीच आ प्रतिहारी ने
सविनय किया प्रणाम
जय जीवेश, प्रजाजन-जीवन
जातरूप अभिराम

[२१]

महामते, सम्राट् अनुज्ञा-
वाहक आया द्वार
है युवराज-चरण-दर्शन की
इच्छा उसे अपार

जैसी आज्ञा हो, यह कह
वह हुआ खडा चुपचाप
आने दो यह शान्त गिरा में
कहा भृत्य से आप

[२२]

हुआ पत्रवाहक आ सम्मुख
खडा सचिव के पास
मानो लिये प्रतीक्षा आया
हो अशोक उल्लास

निज मुद्राङ्कित पत्र पिता ने
भेजा है हे नाथ,
आज्ञा-पत्र मंत्रि को सौंपा
झुका भूमि तक माथ

[२३]

आदरणीय पिता क्या आज्ञा
देते मंत्रिन, आज
तक्षशिला प्रिय प्रजाजनों
के जीवन के अधिराज

जिनका ध्येय धर्ममय
जीवन, सत्य शान्ति विस्तार
जिनके अत्युदार मानस पर
मुग्ध सभी संसार

[२४]

जिनकी राज्य-छत्र-छाया में
पुष्पित सुख मंदार,
जिनकी कान्त कीर्ति में
टूटा अघ का कुत्सित तार

जिनकी स्मय-विलास-रेखा से
ऐश्वर्य उद्यान
अभिनव शान्ति-द्रुम पुष्पित
हो करते जग कल्याण

[२५]

कौन सुधार देश में करना
पिता चाहते आज
किस महान कल्याण-कामना
में है मगध-समाज

यों कह मानस अभिनंदन में
लीन हुए युवराज
पितृ-भक्तिमय श्रद्धा से
सब आप्लुत हुआ समाज

[२६]

धन्य धन्य कह उठे सभासद
निरख पिता में भक्ति
बरसाती सुधांशु की किरणें
अमृत की ही शक्ति

मंत्रि वृद्ध ने पत्र खोल कर
ज्यों ही पढा समग्र
हतचेतन हो गिरे सभा में,
हुई व्यग्रता व्यग्र

[२७]

काल सर्प हो उठा पत्र, फैला
अविरल आतंक
शंका-पंकिल हुए सभासद
बोध बुद्धि से रंक

परिचारक उपचार क्रिया
को दौड़े वस्तु सँभाल
चेतन-चिन्ता-युक्त हुए
निश्चेतन सचिव अकाल

[२८]

निपट झपट चट ही कुणाल
ने पढ़ा पत्र ले हाथ
हर्ष, विषाद, हेतु, जिज्ञासा
उठी एक ही साथ

औत्सुक्य की सागरिका में
डूबे परिषद्-वृन्द
श्वास साध कर प्रजा-पक्ष ने
सुना पत्र साक्रन्द

[२९]

निम्न रूप से लिखा पत्र पर
'आवश्यक आदेश'
तदनु पत्र वह लिखा हुआ
था इस प्रकार निःशेष

"विद्रुच्चक्र-चूड नर-पुंगव
भूमाधव भूपेश
सदा धर्म-रत तत्त्वग्राही
प्रियदर्शी मगधेश

[३०]

द्युमणि लोक का तरणि शोक
का सार विश्व आलोक
कोकनदच्छवि-सा सुबन्धु
माधुर्य अशोक अशोक

सचिव सैन्य-नायक को देता
यह आदेश महान
तक्षशिला के प्रजाजनों का
चाह भूरि कल्याण

[३१]

गुरुतर अपराधी कुणाल की
लो निकाल दो आँख
राज्य-च्युत कर निर्वासन दो
छोड़ो उसकी साख

साम्राज्य अभिलाषा में
है किया पिता से द्रोह
कुसुमोद्भव कंटक कुणाल का
आवश्यक अवरोह

[३२]

सुधाधार में गरल-विन्दु का
उद्‌भव है यह नीच
यह कृतघ्नता से कृतज्ञता
को है रहा उलीच

कर्णिकार-सा शुभ्रानन है,
पर विषाक्त युवराज
विश्वासों में कूट कला सम
नाशक राज-समाज

[३३]

है अस्पष्ट पहेली कुल की
कुल-अंगार कुणाल
मूढ छद्म-वेशी वक भ्रम से
समझा गया मराल

न्याय-प्रिय होने के कारण
देता हूँ यह दण्ड
है सुत निर्विशेष राजा का
न्याय कठिन कोदण्ड

[३४]

आज्ञा-पत्र बाँचते ही तुम
करना नृप आदेश
मण्डनीय आखण्डल-सम मम
पालो न्याय विशेष

शासक प्रजा-पक्ष में से भी
कोई हो न सहाय
दण्डनीय है वह विपक्ष नर
पाश-विलास उपाय"

[३५]

इस विधि कूट पत्र कुत्सा-
युत पढा गया उस काल
हुआ अकाण्ड प्रलय का
ताण्डव भैरव रव विकराल

मोहमयी मदिरा से मूर्च्छित
हुई सभा निर्जीव
हुए कृपाण पाणि रण शूरे
प्रभा-हीन अथ क्लीव

[३६]

हुई स्तब्धता स्तब्ध, जड़
हुआ जाड्य जरठ-सा जीर्ण
क्रमशः क्रोध धूम धुँधियाया
श्रद्धा हुई विकीर्ण

फड़के बाहुदण्ड वीरों के
कड़क कँपा आकाश
चिनगारियाँ चक्षु से चमकीं,
धमका धरा विलास

[३७]

दाँत पीसते हुए वीर सब
बोले खड्ग सँभाल
दम रहते तक हो न सकेंगे
नेत्र-विहीन कुणाल

यह विग्रह विग्रह में
देगा रक्त पंक आतंक
विपुल वाहिनी में नाचेगा
नौका सम निःशंक

[३८]

कभी न ऐसा होगा
बोले वज्र-ध्वनि से वीर
खड्ग खडकने लगे
म्यान में, खौला खून शरीर

धीरज धसका, बलका उठ बल,
हुई खलवली शोर
सेनापति तब यों उठ बोले
सुनिये भूप-किशोर

[३६]

है अन्याय-पूर्ण यह आज्ञा
कुत्सित और जघन्य
कुसुममसृण से कल-
कुमार को दण्ड अधर्म अनन्य

यहाँ वास करते कुमार से
सम्भव क्यों अपराध
कूटनीति से भी यह क्योंकर
पूरी होती साध

[४०]

है अन्याय्य अकार्य कार्य
जो सौंपा हमको आज
सादर किन्तु—स्पष्ट रूप से
है प्रतिकूल समाज

सबलों की खूनी दाढ़ों से
करना निबल बचाव
न्यायधर्मरत महाराज का
क्या यह उचित झुकाव ?

[४१]

सचिवाग्रणी तदनु यों
देने लगे नीति-सन्देश
महाराज मुद्रांकित दल में
संशय का संवेश

पहले कपट झलक का
निश्चय करना है अवशेष
असुनिश्चित पथ पर चलने से
पीछे दुःख विशेष

[४२]

न तो तर्कमय लेखन-शैली
इसमें है गम्भीर
तथा सिद्ध अपराध
कोटि का इसमें पुष्ट शरीर
कैसे तथा कहाँ भडकाई
विद्रोहाग्नि प्रचण्ड
कौन न्याय से मिला
इन्हें है अन्धेपन का दण्ड

[४३]

अस्तु, दूत भेज कर फिर
यह निश्चय है कर्त्तव्य
परप्रत्यय पर निश्चय
करना नय-विरुद्ध त्यक्तव्य

हैं संसार प्रथित विश्रुत
बल नय के वे आलोक
इनकी तक्षशिला नियुक्ति
के कारक स्वयं अशोक

[४४]

साधारण आदेश-पत्र में
कैसे आज्ञा मान्य
प्रान्त द्रोह की आशंका से
आते जन अन्यान्य

निःसन्देह कपट से पूरित
पत्र-प्रबन्ध महान
हैं युवराज प्रजाजन के
प्रिय अपर अशोक समान

[४५]

ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण
होते ये अवनीश
फिर विद्रोह असम्भव
इनसे बोले न्यायाधीश

उचित तर्क-मय नीति-
गिरा सुन हुए सभाजन शान्त
धन्य धन्य कह उठे
लोग सब होकर मुग्ध नितान्त

[४६]

एक-स्वर से बोल उठे
सब है अमान्य आदेश
बाल-गिरा गुणमयी ग्राह्य
निर्गुण अग्राह्य सुरेश

आज्ञावाहक देख रहा था
नृपादेश - परिणाम
अर्धचन्द्र देने को झपटे
वीर समझ अघधाम

[४७]

कोमल-हृदय कुमार देख
यह बोले हो गम्भीर
सदा विवेक-बुद्धि से
करते काम नीति-मति-धीर

कभी न शिष्ट अभीष्ट वस्तु
हित खोते हैं परमार्थ
व्यर्थ अर्थ साधन
हित जन में उत्कट होता स्वार्थ

[४८]

धर्म अधर्म अपेक्षाकृत है
वस्तु तत्त्व अनुसार
राज-समाज-नीति का
द्वैधीकरण अज्ञता सार

सब शास्त्रों के मूल नियम में
व्यापक एक विधान
प्रकृति-अवस्था काल-भेद से
है नाना-पन भान

[४९]

इसी तरह राजा के नाते
वे हैं अति सत्कार्य
मर्यादा उल्लंघन करते
केवल अज्ञ अनार्य

राज्य-शक्ति से विग्रह करना
है अन्याय अकार्य
सच विद्रोह-वह्नि में जलता
सेवक का औदार्य

[५०]

हूँ निर्णीत सिद्ध अपराधी
भूप - बुद्धि - अनुसार
निर्णायक मुद्रांकित दल है
फिर संशय अविचार

प्रथम सुपूज्य पिता के नाते
आज्ञा-पालन कृत्य
हूँ द्वितीय शासक संवर्धित
एक अकिञ्चन भृत्य

[५१]

क्या न राम अभिराम गये थे
वचन मान वनवास
मैं ही क्यों अनार्यजन आदृत
बनूँ पात्र उपहास

इससे अधिक न्याय का परिचय
क्या देते सम्राट
पुत्र-स्नेह त्याग राज्य-श्री
चिन्ता हुई विराट

[५२]

क्रूर कृतघ्नी को अन्धेपन
निर्वासन का दण्ड
राजाज्ञा पित्राज्ञा द्वय से
हूँ मैं बद्ध अखण्ड

दुख सुख ये शरीर के अनुभव
क्षण - जन्मा साद्यन्त
धर्म विश्वतंत्री का सुन्दर
ध्रुव पद राग अनन्त

[५३]

है अच्छेद्य अभेद्य अजन्मा
आत्मा अमर अनादि
कर्तव्यच्युत कर न सकेगी
माया-मयी उपाधि

न्याय-निष्ठ नृप का निर्णय ही
धर्म अधर्म विरोध
जहाँ अनेक मनुष्यों का हित
हो वह अहित निरोध

[५४]

मम विद्रोह-वह्नि से
सम्भव बहुत जनों का नाश
एतदर्थ निज सुत को नृप ने
दिया दण्ड निर्वास

नृप-निर्णय भूपर कुतर्क
की संशय-भित्ति अयुक्त
न्याय-ज्ञान पिता का सुत से
है विशेष उपयुक्त

[५५]

है न पुत्र अधिकार पिता में
समझे संशय बुद्धि
तथा नृपति-आज्ञा पालन ही
सेवक की सद्बुद्धि

दण्ड उभय था बद्ध, हमें दो
पित्राज्ञा - अनुसार
क्षण-भंगुर जीवन में हो मत
परिभव प्रत्युद्गार

[५६]

राज्य-श्री-लिप्सा की प्यासी
दो ये आँखें फोड़
चक्रवर्ति-सुत-दुरवस्था से
करे न कोई होड

अन्धे निर्वासित मुझको लख
दुखी न होना सभ्य
सुख-दुखमय प्रवाह जीवन का
रोते मूर्ख असभ्य

[५७]

मै दोषी हूँ या निर्दोषी
यह न तुम्हें अधिकार
नृप-निर्दिष्ट दण्ड्य को
देना दण्ड विशुद्ध प्रकार

यह कह उतरे सिंहासन से
शासक-चिह्न उतार
जोड कर-द्वय नत-ग्रीव हो
किया दोष स्वीकार

[५८]

हा-हाकार हुआ सभ्यों में
छाया शोक अपार
मंत्र-बद्ध-सा नाग-वंश का
क्रुद्ध सभी परिवार

होकर खिन्न सचिव यों बोले
दारुण न्याय-विधान
सुत-वात्सल्य, प्रणय मैत्री में,
अरि में एक समान

[५९]

बनते हैं विश्वस्त सदोषी,
दोषी पाते त्राण
है अचूक यह कर्म-कसौटी,
जगदाधार - प्राण

भूपाज्ञा से पितृ-प्रेम से
अथवा लख निज दोष
स्वयं कुमार दण्ड सहने का
करते हैं उद्घोष

[६०]

है कर्तव्य कठोर न इसकी
कहीं, जान पहिचान
चींटी से हाथी तक इसका
प्रतिबिम्बित है ज्ञान

हृदय-पुष्प पर तीव्र तड़ित का
होगा वज्र प्रहार
हृदय-तंत्रियों के टूटेंगे
यद्यपि झन झन तार

[६१]

किन्तु कान है नहीं न्याय के
सुनता नहीं पुकार
जो विवेक की सूक्ष्म दृष्टि से
देख रहा, वह सार

आओ इस कर्तव्य-वह्नि का
देखो टुक आलोक
महाराज भी जिसे निरख कर
बने अशोक अशोक

[६२]

सेनापति सम्मत मंत्री ने
पढकर नृपति-निदेश
कहा दण्डनायक से साधो
जो है कार्य अशेष

आज्ञप्त हो दण्डधरों ने
घेरे राजकुमार
स्थिरता शक्ति सरोवर में
वे करने लगे विहार

[६३]

लोह-शूल ले दण्डाधिप ने
फोडे नेत्र विशाल
शोणित-शैवलिनी में डूबे
सहृदय हो बेहाल

कुन्देन्दु-से सुन्दर पापहारी
थे आपही तो जनतापहारी

[६७]

निर्दोष राकेश अनीतिहारी
प्रख्यात थे आप प्रजा-विहारी
था कौन-सा दोष दशा हुई है
विद्रोह-दावाग्नि तुम्हें छुई है ?

[६८]

है सर्वथा झूठ न झूठ ऐसा
है थूकना सूरज पाप जैसा
आलोक थे आप अशोक जी के
विश्वास सारे अब शोक ही के

[६९]

बस अश्रु-पूर्ण विलोचनों से
कॉपती रोने लगी
नेत्र अविरल धार से
सारी धरा धोने लगी
निर्जीव-सी वह हो गई,
खाकर पछाड़ें गिर पडी

सारे सभा-जन चीख मारे
रो रहे थे उस घडी

[७०]

हाय, क्या अब हम भिखारी
हो गये जो भूप थे
हाय, जीवन-दीप तुम तो
रूप के भी रूप थे

कन्दर्प के थे दर्प जो
तुम हाय अब अन्धे बने
होकर विनिर्वासित अपाहिज
पाप के पंकिल सने

[७१]

विश्वास होता है नहीं
क्या स्वप्न में सब हो रहा
नहीं यह तो सत्य है
मम भाग्य-रवि ही सो रहा

करुणानिधे, क्या आपको
करना यही स्वीकार था

फिर राज्यकुल में जन्म देकर
क्यों किया अपकार था

[७२]

हाय, जिनकी दृष्टि से
सुख-वृष्टि थी होती घनी
जन्म की उपयोगिता
जिनके सुदर्शन से बनी

आज वे प्रियतम हमारे
चक्षु-हीन किये गये
लोक के सौन्दर्य के
सर्वस्व दीन किये गये

[७३]

हे प्रजाजन, भीख देना
माँगने पर आप भी
स्मरण रखना हम गरीबों
पर दया रखना सभी

हैं हम विनिर्वासित
दरिद्री भिखमँगे संसार के

दैन्य के धन, दुख-निकेतन,
शाप नृप परिवार के

[७४]

क्षमा करना हे सचिव,
जो कुछ अनय हमसे हुआ
सेनापते, भेजो सँदेशा
भूप-दल-पालन हुआ

हाय, जो कवि-कण्ठ थे
सौन्दर्य के सर्वांग थे
आज घर घर धूलि-धूसर
फिरेंगे कण माँगते

[७५]

हाय, जो था हाथ निर्भयता
तथा धन दान को
आज कण कण के लिए
फैला विसारे मान को

करुण क्रन्दन कर रही थी
कामिनी इस विधि वहाँ

उठी आकुलता रुदन की,
झड़ी घन की-सी महा

[७६]

भर हिलकियाँ विकलता रोई,
गरजा दुख घनघोर
धीरज हटा, शोक-तरु फूला
आर्तध्वनि सब ओर

द्विगुणित हुआ प्रवाह रक्त
का मिल कर आँसू-धार
अचला चली, दिशायें काँपीं
धधका हाहाकार

[७७]

अविरल कुन्तल कल कुमार
थे काम-कला-कल्याण
पंच बाण की अकृत विजय
पर षष्ठ स्मर के बाण

शोकाकुल मानस के रुचिकर
मानस हंस मराल

प्रजा-पक्ष गत न्याय-कक्ष
के रक्षक दीन-दयाल

[७८]

साधु-सुधा के उदधि,
कल्पतरु कोविद-जन-समुदाय
हाय, विवेक वल्लरी कलिका
मुरझाई निरुपाय

हुआ विवेक विरक्त,
सरसता रूठी रोकर आप
काव्य-कलाप करुण रस डूबे,
करने लगे विलाप

[७९]

सुना प्रजा ने जब कुमार का
किया गया ये हाल
विद्रोह-स्फुलिंग उड़े सब
नगरी में तत्काल

पागल हुए प्रजा जन दौड़े
राज-सभा की ओर

सेनापति, मंत्री, अशोक को
लगे कोसने घोर

[८०]

तब कुमार ने व्यथित-चित्त
से समझा कर दी शान्ति
आज्ञा-पालन धर्म प्रजा का
अविश्वास विभ्रान्ति

मैंने भी आज्ञा-पालन-हित
सहा दुःख का भार
कर्म-निष्ठ हो धर्म-पालना
सबसे श्रेष्ठ प्रकार

[८१]

इस प्रकार तज राज्य चले
वे धर्माधार कुमार
भीख माँगते गाते प्रभु
की महिमा अपरंपार

पूर्ण सुधांशु-किरण-सी
उज्ज्वल रमणी पकडे हाथ

रति-शृंगार रेख-सी,
छाया चली इन्दु के साथ

राग भैरवी तीन ताल

प्रभो तव लीला कौन बखाने
अविदित गति हो कौतुककारी
परम प्रवाण सयाने
भक्त जनों की प्रखर परीक्षा
लेते रहे न माने
हरिश्चन्द्र पर विपति पड़ी
जब लेट रहे पट ताने
सहे कष्ट अति भीषण वन में
पाण्डव जन वनिता ने
चौदह वर्ष फिराया वन में
दास-वृत्ति से साने
वाल्मीकि से वधिक रसिक
वर, है तव हाथ बिकाने
हो अति वृद्ध हँसी सूझी है
तुम्हें कौन पहिचाने

चक्रवर्ति-सुत निर्वासित
अन्धा यह क्यों कर जाने

[८२]

निरख दुःख-घटा घिरती हुई,
सलज घूंघट से सटती हुई
निपट शुष्कलता-सम वो हुई
गत हुई सुषमा कटुतामयी

[८३]

न चल ही सकती थकती हुई
चकित भीत मृगी सहमी हुई
कठिनता पथ की रटती चली
भटकती पति संग गली गली

[८४]

सहमती वन-जीव विलोक के
विलखती पति को अवलोक के
निदय दारुण दुर्विधि कोसती
पतिपरायण दीन बनी सती

[८५]

विषमता वन पन्थ उठा रही
न समता विपरिस्थिति में रही
पकड़ के पति-हस्त निरस्त-सी
भटकती वन-पन्थ समस्त ही

[८६]

रति-अनंग कभी जन मानते
समझ भूप कभी सनमानते
दुसह दारुण थी मन-वेदना
किस लिए प्रभु, दी यह यातना

[८७]

अहह, दुःसह दण्ड-विधान है
नृपति-पुत्र सहें अपमान हैं
मरण क्यों न हुआ इस काल है
विषमता विधि की विकराल है

[८८]

कोमल कुसुम सेज पर
जिनके छिलते पैर अपार

हाय, कण्टकित पथ मे
शोणित के हैं वे आकार
नृपति - मुकुट - मणि - चुम्वित
पद ये विम्वा-कुसुम-समान
धूलि-धूसरित आज वने वे
मुझ दुखिया के त्राण

[८६]

दुखी देख पत्नी को
स्वामी देते ढारस, धीर
कभी सुनाते कथा पुरानी
वैठे तटिनी-तीर
मेरे अपराधों के
कारण पत्नी सहती कष्ट
छार छार कर देती
मन को यही वात सुस्पष्ट

[९०]

पति को चिन्ताकुलित
देख कर रोती पग गिर आप

पशु पतंग ठिठके-से रोते
सुन कर करुण विलाप
प्रेम पुनीत सती के सिर पर
रख कर पावन हाथ
धीरज, धर्म, ज्ञान की
सुन्दर कहते फिर फिर गाथ

[६१]

कभी विहंगम के कलरव
को मुदित चित्त से बाँच
प्रकृति-नटी में सुखमय
पाते नित्य नया-सा नाँच
विजन प्रान्त निर्झर लहरों से
गाते देकर ताल
कभी प्रकृत-संगीत-सुधा
सुन होते प्रणय प्रवाल

[६२]

कुसुम-केशरों से अधिवासित
पाकर शीत समीर

प्रभु प्रदत्त एकान्त विभव से
होते मन गंभीर

कादम्बिनी-कदम्ब कभी
जब आते ले जल-धार
बन मयूर-सम मन-मयूर
भी करता नृत्य अपार

[६३]

शैवलिनी-पुलिनों की
सिकता पर होकर आसीन
माधव में माधव के
गुण-गण गाते लेकर वीन

मोहक रूप मंजु आकृति-
युत कभी माँगते भीख
मंत्र-मुग्ध जगती-जन होते
सुन्दर सुनकर सीख

[६४]

इस प्रकार गिरि, कानन,
जनपद फिर कर वर्ष अनेक

मगधदेश में आये लेकर
पिता मिलन की टेक
फिरते निकट अचानक
पहुँचे चक्रवति-प्रासाद
गाते भक्ति प्रसंग ईश के,
मंजु कथा संवाद

[६५]

पुरवासी वालक-नर-नारी
मन्त्र-मुग्ध आकार
फिरते थे कुमार के पीछे
समझ देव-अवतार
चिर-परिचित कोमल कण्ठ-
ध्वनि पड़ी भूप के कान
झाँके उझक झरोखे से टुक,
सुना गान दे ध्यान

[६६]

विस्मय उठा उचक कर
बिजली दौड़ी सभी शरीर

भौंहें तनीं विशाल भाल पर
खिंची रेख गम्भीर
स्मृति जागी, प्रत्यक्ष
अभिज्ञा हुई चकित थे भूप
शोक प्रकट होकर छाया था
मानो धर नर-रूप

[६७]

मूर्च्छित होकर गिरे भूप
तब करके दीन पुकार
हा मम जीवन-दीप पुत्र,
दुख झेला आप अपार
संभ्रम परिचारक-गण दौड़े
मूर्च्छित स्वामी जान
वैद्य विवेकी घबराये-
से करते नाड़ी-ज्ञान

[६८]

अत्युपचार क्रिया से जागे
मूर्च्छा छोड़ महीप

हा सुत, हृदय-हार, जीवन-
विधु, मौर्यवंश के दीप
कहा भूप ने सादर लाओ
सुत को मेरे पास
पहुँचे दौड़ द्वार पर सारे
रक्षक, दासी दास

[९९]

कर प्रणाम सादर भूपाज्ञा
सुना, कहा हे नाथ!
हो उद्विग्न पड़े हैं भू पर
पिता कष्ट के साथ
सादर महलों में ले आये
नृप अशोक के पास
आर्त-ध्वनि से गूँज रहा था
सारा वह आवास

[१००]

देखा वेष कषाय लिये
कर वीन कुमार कुणाल

मूर्छित हो कर गिरे प्रजापति
गत-चेतन बेहाल
कोमल पद-रज सिर धर
सुत ने किये प्रणाम अनेक
मानो वैभव के चरणों में
बिखरा सभी विवेक

[१०१]

फिर चेतन हो भेंटे सुत से
मस्तक सूँघ विशाल
पुलकित रोमावली हुई
सब स्विन्न देह अति काल
पुत्रवधू के मस्तक पर
कर रक्खा दे आशीस
सती सहे दुख भारी यह
कह खिन्न हुए पृथ्वीश

[१०२]

थे रण-पण्डित किन्तु कान्त
हे सुत, तुम शान्त उदार

बालक होते हुए विवेकी,
कुसुम-समान कुमार
सब पुत्रों में तुम्हीं एक थे
मम आशा-आलोक
हाय, पुत्र मेरे प्रमाद से
हुआ तुम्हें यह शोक

[१०३]

हन्त, चक्रवर्ती के सुत हो
पाया कष्ट अपार
अरे, हृदय क्यों फट कर
टुकड़े होता नहीं असार
सौतेली माँ तिष्यरक्षिता
का यह कूट प्रहार
कैसे सहा जायगा तुमसे
आजीवन अपकार

[१०४]

नीर-क्षीर विवेक न्याय था
विश्रुत सब संसार

क्या मुँह लेकर अब यह
जीवन रक्खूँ तुम्हें निहार
निरपराध थे हृदय-खण्ड, तुम
पितृ-भक्ति के दर्प
हुई पिशाची माता अब तो
तव जीवन की सर्प

[१०५]

भीख माँगते फिरे पुत्र, तुम
निर्वासन कर प्राप्त
यह जीवन नश्वर है हा,
क्यों होता नहीं समाप्त
हाय, क्रूरता कटुता से तुम
बने अन्ध विद्रूप
थे कुणाल, तुम काम-कला-
धर नेत्र-शक्ति के रूप

[१०६]

भीत मृगी-सी पुत्र-वधू को
निरख हुआ संताप

करुणा रोई करुणा करके
सुनकर भूप विलाप
हे सुकुमारी पुत्रि, तुम्हें
सहना था क्या यह क्लेश
हा दुर्दैव विपाक बने क्यों
इतने क्रूर विशेष

[१०७]

हे सुत, तुमने पितृ-भक्ति का
पाया यह उपहार
क्यों न पत्र का ही निश्चय कर
लिया कुणाल कुमार
कहा पुत्र ने, खेद दुःख का
कारण नहीं विशेष
नृपादेश के व्याज पिता यह
भाग्य भोग था शेष

[१०८]

हूँ प्रसन्न नृप पित्राज्ञा में
छूटें यदि मम प्राण

है आज्ञा-पालन ही जग में
जीवों का कल्याण

किन्तु एक ही खेद मुझे था
काञ्चन थी जो साथ
मुझ अन्धे की लकड़ी बन
यह चली पकड़ के हाथ

[१०६]

कहा पिता ने निरपराध हो
सहा कठिन यह दण्ड
तिष्यरक्षिता पर फिर उनको
आया क्रोध प्रचण्ड

राज-सभा में निश्चय होगा
इसका गुरु अपराध
यह कह दिया निदेश सचिव को
रानी को दो बाँध

[११०]

जननी पद्मा निरख पुत्र को
करती हुई विलाप

पुचकारती, चूमती, मिलती
रोती कर संताप
देखा सुत काञ्चन को दुख से
दुर्बल दीन कृशांग
तिष्यरक्षिता के कृत्यों से
दग्ध हुआ सर्वांग

[१११]

इस प्रकार दी गई सान्त्वना
दोनों को उस काल
हुए सहानुभूति के आकर
कांचन और कुणाल
वैभव-भरे महल में फिर
सुख सोये राजकुमार
भाग्य-विलास लास्य-सा करके
जागा दे अधिकार

[११२]

हुआ प्रभात अंशुमाली से
आलोकित संसार

उठे नीड से विहग गवैये
खींच प्रभाती तार

शीतल मंद सुगन्ध समीरण
करता वहन विनोद
कुसुम केलिकर खिलते करके
रवि-किरणों में से मोद

[११३]

कलियाँ चटकीं सुख विभोर हो
सुन भौंरों की तान
मृदु पल्लव से तरुओं ने मिल
किया उषा-सम्मान

सटकी निशा चन्द्र मटकी ले
अस्ताचल की ओर
दिग्दिगन्त ने गाई गाथा
नृप की चारों ओर

[११४]

नित्य कृत्य करके नृप आये
परिषद में स्वच्छन्द

सभी सभाजन विजय-नाद कर
उठे निरख सानन्द
कर समाप्त आवश्यक पहले
सभी सभा के काम
तिष्यरक्षिता अथ कुणाल का
लिया गया फिर नाम

[११५]

दोनों हुए उपस्थित नृप की
आज्ञा के अनुसार
कहने लगे तभी पृथ्वीपति
कर गम्भीर विचार
रोगाक्रान्त हुआ था जब मैं
था यह जीवन भार
धन्वन्तरि-सम वैद्यवरों का
होता था उपचार

[११६]

था चिर काल स्वप्न-सा
मुझको खाना पीना अन्न

तिष्यरक्षिता ने सेवा कर
मुझको किया प्रसन्न
इस प्रसाद के प्रतिफल माँगा
सात दिनों का राज्य
मैंने भी होकर प्रसन्न मन
दिया उसे साम्राज्य

[११७]

इसी बीच में नीच-स्त्री ने
मुद्रांकित आदेश
भेजा तक्षशिला-मंत्री को
पालन हेतु विशेष
मुद्रा निरख सचिव-मंडल ने
ली दो आँख निकाल
निर्वासन दे दिया नगर के
नृप को कर बेहाल

[११८]

आज्ञा-पालन कर मंत्री ने
भेजा जब संदेश

पढ़ते ही वह पत्र मुझे थी
चिन्ता हुई विशेष
भेजे दूत बुला लाने को
इन्हें विपद में जान
किन्तु न इनका पता लगा कुछ
हुआ खिन्न मैं म्लान

[११९]

देश-विदेश भ्रमण करते सुत
सहते दुःख अपार
कल ही यहाँ मगध में आये
पत्नी-सहित कुमार
सुन यह दुःसंवाद सभाजन
करके घृणा प्रकाश
रोने लगे देख नृप-सुत की
दशा भरे निश्वास

[१२०]

महाराज फिर बोले दुख में
भरे हुए उस काल

न्याय-नीति-अनुसार पुत्र है
यह युवराज कुणाल

सम्प्रति 'सम्प्रति'[1] ही कुमार-सुत
होगा अब युवराज
तक्षशिला के विद्यालय में
पढ़ता है जो आज

[१२१]

मेरे रहते तक वह होगा
तक्षशिला का भूप
तदनु पाटलीपुत्र राज्य का
एकच्छत्र अनूप

यह कह नृप ने सभा विसर्जित
कर दी उठ कर आप
निरपराध सुत के दण्डों का
था उनको परिताप

---

[1] सम्प्रति कुणाल का पुत्र था। यह बड़ा महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति था। यही णाल के बाद युवराज बना।

[१२२]

पुत्र-भक्ति की स्मृति में नृप ने
सुत का एक अनूप
तक्षशिला नगरी में सुन्दर
एक बनाया स्तूप

घृणा-कलह-विष डसे हुओं को
जो देता सन्देश
पितृ-भक्ति का उज्ज्वल पाठक
पढ़िये रूप अशेष

[१२३]

सम्प्रति ने समाप्त कर विद्या
विद्यालय की पूर्ण
तक्षशिला की राज्य-प्राप्ति में
किये शत्रु सब चूर्ण

थी प्रतिबिम्बित चन्द्रगुप्त की
बिन्दुसार की मूर्ति
थी सम्राट अशोक, पिता की
सम्प्रति नृप में स्फूर्ति

[१२४]

सम्प्रति वीणा ने फिर गाया
एक सुरीला गान
दिग्दिगन्त में हुआ प्रवाहित
एक राग कल्याण

हुई प्रवाहित आनन्दों की
मन्दाकिनि आकण्ठ
किया निमज्जन सज्जन ने फिर
गाया गुण कल कण्ठ

सप्तम स्तर

[१]

मगध-राज्य से भूप विदेशी
थे सारे ही क्रुद्ध
इसी लिए मौर्यों से करते
यदा कदा थे युद्ध

पश्चिम-उत्तर-दिग्विभाग में
थे जालोक[1] नियुक्त
वीरवाहिनी मगध-सैन्य से
रहते थे संयुक्त

[२]

हूण, शकों से किये अनेकों
सुत अशोक ने युद्ध

---

[1] जालोक सम्राट् अशोक के पुत्र का नाम था।

कतिपय वार परास्त किया
उन सबको होकर क्रुद्ध
तक्षशिला भारत-प्रवेश का
बना मुख्य था द्वार
सभी देशवासी करते थे
अपना सब व्यापार

[२]

था अति शस्त चतुष्पीठों में
यही नगर अति कान्त
वैदेशिक फिरते थे जिसको
लेने को उद्भ्रान्त
प्रथम बैक्ट्रिया से आक्रान्ता
आये सेना साज
उनमें दात्ता मित्रि[1] बना था
तक्षशिला अधिराज

[1]दात्ता मित्रि—डेमेट्रियस युथीडेमस का पुत्र था। यह बैक्ट्रिया का राजा था।

[४]

गान्धार पंजाब प्रान्त का
छीना समधिक भाग
'भारतंश'[1] कहलाया करके
पुष्पित प्रजा पराग

तक्षशिला सम्प्रति से
छीनी आते ही तत्काल
नई नीति से राज्य-स्थापन
किया कृपाण सँभाल

[५]

उसके वंशज अप्पयदास[2]
प्रखर प्रभामय भूप
थे हिन्दू संस्कृति के सच्चे
भक्त पिता अनुरूप

---

[1] V A. Smith ने इसको King of Indians कहा है। क्योंकि उस समय गान्धार और पंजाब को जीत कर इसने अपने अधीन कर लिया था।

[2] एपोलो डोटस का नाम 'अप्पयदास' था। प्रायः भारतीय लोगो ने सारे ही ग्रीक राजाओं के हिन्दू नाम रख लिये थे। ग्रीक नाम से पुकारना कदाचित् उस समय आर्य लोग अनुचित समझते थे।

बने आर्य संस्कृति के रक्षक
अप्पयदास नरेश
राज्य-प्रणाली चन्द्रगुप्त-सम
थी जिनकी निःशेष

[६]

बौद्ध-धर्म की धवल धरा में
उड़ी कीर्ति अभिराम
देश विदेशों में प्रचार था
जिनका लक्ष्यललाम

समयोचित सुसभ्य शासन में
प्रजा-हित-मयी नीति
विप्लव के मेघों में बहकी थी
मानो भव - भीति

[७]

मंत्र अहिंसा का उत्कटतर
जपा गया उस काल
सैन्य-शिथिलता हुई नृपति-
दुर्भाग्य रेख विकराल

यवन-क्रीत दास नृप आया
ले दल-बल निःशंक
जयकर अप्पयदास[1] प्रान्त के
नभ का बना मयंक

[८]

तदनु मिलिन्द[2] बना भूपति था
तक्षशिला का उग्र
जिसने समधिक भारत-भू को
किया सैन्य से व्यग्र

गान्धार जय कर निज बल से
तक्षशिला ली छीन
करुण-क्रन्दन प्रजाजनों में
सोता उठा नवीन

[९]

अप्रत्याशित आक्रमणों से
खिन्न प्रजा सब ओर

---

[1]यूक्रे टाइडस।

[2]मनाण्डर-बौद्ध धर्म-ग्रन्थों में इसका नाम मिलिन्द ही था।

उठा अनेक राष्ट्र में कटुता का
विषाक्त रव घोर
नये ठाठ से तक्षशिला में
हुआ राष्ट्र-निर्माण
विद्युत्-गति से हुआ अग्रसर
फिर यम का-सा बाण

[१०]

पुष्यमित्र थे नृप कलिङ्ग के
आर्य प्रजा प्रतिपाल
जो नय से करते भू पर थे
निज शासन उस काल
करुण कथा से था
अतिरंजित पहले ही वह देश
मगध-क्रूर कृपाण रगड़ से
था कुछ जीवन शेष

[११]

अभी पनपने ही पाया था
कुछ कुछ वह साम्राज्य

स्वास्थ्य-सुधार रहा
रोगी-सम वह कलिङ्ग का राज्य

सभी दिशाओं में उठते थे
उन्नति के आसार
क्रूर काल बन कर
मिलिन्द ने किया उसे भी छार

[१२]

पुष्यमित्र को करदाता
कर चला प्रान्त सौराष्ट्र[1]
औद्धत्य से आँख मीचकर
बना सतत धृतराष्ट्र

मथुरा, माध्यमिका[2] को
करके विजय बना अति भीष्म
रवि की प्रखर रश्मि को पाकर
ज्यों दुःसह हो ग्रीष्म

---

[1] सौराष्ट्र इसे आजकल 'काठियावाड़' के नाम से पुकारते हैं।

[2] माध्यमिका नामक एक वैभवशाली नगरी चित्तौर (राजपूताने) के पास थी।

[१३]

अलचेन्द्र-सा अपर विजेता
चन्द्रगुप्त-सा वीर
आया नगर अयोध्या में
धर रण का रुद्र शरीर

किया हस्तगत अनतिकाल
में वह समस्त ही प्रान्त
विजय-वैजयन्ती फहरा कर
बौद्ध-धर्म की कान्त

[१४]

शुंग नृप-श्री मगध-धरा को
किया निखिल आधीन
मौर्य-परिणता शुंग-श्री थी
जहाँ प्रभा से हीन

इस प्रकार लेकर मिलिन्द
ने भारत-कुसुम-पराग
तक्षशिला-रमणी को
सौंपा फिर दृढ दीर्घ सुहाग

[१५]

शपथ ली अथ सौगत धर्म की
कठिन-सी धनुज्या फिर नर्म की
नय-परायण हो रण से हटा
दुख घटा छिटकी सुख की छटा

[१६]

सरसता रिसती बहने लगी
सब प्रजा सुख में रहने लगी
विवशता बहकी, नय उग्र था
कुटिलता ठिठकी, सटकी व्यथा

[१७]

विनय में ऋत, गौरव में दया
अचलता वच में, गुण था नया
कपट था पटकार अशेष में
द्रुत विलम्बित कार्य विशेष में

[१८]

इस प्रकार था शासन उसका
सभी सुखों का मूल

कोई रहा न विप्रतिपक्षी
थे सब ही अनुकूल

मार्तण्ड-सम उग्र कीर्ति से
आलोकित नृप-राज
हुआ मिलिन्द शिरोमणि
सबका रंजित प्रजा समाज

[१६]

कतिपय वर्षों तक शासन कर
छोड़ा यह संसार
सभी देश के प्रजा-गणों में
छाया शोक अपार

देह[१]-भस्म-कण ले कर लौटे
निज निज नगर सुजान
मगध, कलिङ्ग आदि देशों में
बने समाधि-स्थान

---

[१] He acquired a widespread reputation and it is said that when he died various cities contended for the honour of giving sepulchre to his ashes. V A Smith, *Ancient and Hindu India*, p 123.

[२०]

था यह अन्तिम ग्रीक नृपों
में तक्षशिला का भूप
आया शक महौष[1] उग्र-सा
बन कर राजा रूप

पैर न जमने पाये, आया
अन्त्यलकादश[2] एक
था दयालु न्याय-प्रिय राजा
धीर वीर सुविवेक

[२१]

भेज अहिल्योरस सेनापति
दल बल युक्त नितान्त
किये प्रजा जन निजाधीन
ले सब सुराष्ट्र का प्रान्त

नव ईरान प्रथा से की
फिर वासुदेव की भक्ति

---

[1] मायूस।
[2] एन्टियाक्लिडस।

आर्य-धर्म में देख अनूठी
मोक्षदायिनी शक्ति

[२२]

इसके कुछ दिन बाद हुआ था
अर्जितयश[1] शक भूप
जो कराल कलिकाल-कृपा
से बना धरा का रूप

इसी समय गाण्डीवपुरुष[2]
दल बल से चढ़ा उदग्र
तक्षशिला पर विजय प्राप्त कर
जीता प्रान्त समग्र

[२३]

इसने सब पंजाब जीत कर
दूर किया आतंक
निज की राजनीति से
शासन किया निपट निःशंक

---

[1] आशेज।

[2] गोंडाफोरस।

तक्षशिला ने इसका
शासन देखा शुभ्र महान
जरा-जीर्ण तन में आ चमके
नव-स्फूर्ति-मय प्राण

[२४]

थी अति वैभव-पूर्ण कीर्ति-
मय तक्षशिला उस काल
था अशोक-सम प्रजापरायण
वह नृप अपर कुणाल

फिर नृप अभिधागिरिश[1]
हुआ था जनपद का कुछ काल
था वह दुष्ट, उग्र, अन्यायी
स्वेच्छाचर विकराल

[२५]

त्राहि त्राहि कर उठी प्रजा
सब हुआ प्रान्त उद्भ्रान्त

[1] एण्डागसेज।

कार्य फलाकायेश[1] भूप ने
आकर किया प्रशान्त

श्रोत्रियमेष[2] हुआ पीछे
था राजा उसका पुत्र
निज मुद्राएँ चला प्रान्त
में बना प्रजा का मित्र

[२६]

हुआ भीमकायेश[3] भूप तब
उसके कुछ दिन बाद
किन्तु काल इतिहास पृष्ठ
में मुद्रांकित है याद

सिंध, नर्मदा, काशी तक था
इसका विस्तृत राज्य
मालव क्षत्रप स्वीकृत
करते रहे सदा साम्राज्य

---

[1] कजुला काफेसस।
[2] सोतीमेंघस।
[3] बीमा काफिशस।

[२७]

हुए कनिष्क[1] प्रजा जन
स्वामी हितकामी अति काल
नई राजधानी पेशावर
थी इनकी सुविशाल

तक्षशिला साधारण जनपद,
बना कला से हीन
पुष्पपुरी[2] में यौवन उभरा
तक्षशिला थी दीन

[२८]

थे सम्राट अशोक अपर से
नृप कनिष्क मतिमान
विद्या, कला, धर्म, शासन में
रण में पूर्णज्ञान

पूर्व एशिया के जनपद
अथ गान्धार से चीन

---

[1] कनिष्क का विस्तृत वर्णन केवल इसी कारण से नहीं दिया गया तक्षशिला से इनका कोई विशेष सम्बन्ध न था, अन्यथा अशोक के ान ये भी भारत के सम्राट् थे।

[2] पेशावर।

थी विश्वस्त राज्य-परिपाटी
सुदृढ़ तथा प्राचीन

[२९]

हिन्दू-बौद्ध-धर्म दोनों का
सादर किया प्रसार
विष्णु, रुद्र की विविध
मूर्तियों में था ग्रीक विचार

हुए वशिष्क, हविष्क प्रजा
के रक्षक नृपति महान
वासुदेव नृप पिता परायण
प्रजा-सखा, विद्वान

[३०]

वासुदेव नृप के सिंहासन
लेते ही उस काल
हुए आक्रमण रण क्रूरों के
हूणों के विकराल

किये ध्वंस सब नगर इन्होंने
बन कर अत्युद्दण्ड

दस्यु-भाव से बढ़ते बढ़ते
बने नरेश प्रचण्ड

[३१]

किन्तु अन्त को आर्य-धर्म के
हूण हुए स्व-ग्रास
हिन्दू होकर जिये मरण में
छोड़े हिन्दू-श्वास

था औदार्य आर्य जीवन में
था न कहीं वैषम्य
थे सत्य-प्रिय धर्म-परायण
भारतीय अति रम्य

[३२]

किये अनार्य आर्य सारे ही
आक्रान्ता भूपेश
हिन्दू-जीवन में आकर्षण
था यह एक विशेष

बुझे हुए दीपक से अब हम
करते मार्ग निदेश

जीर्ण कलेवर में यौवन का
लिये हुए पटवेश

उपसंहार

[३३]

काल-चक्र के हेर-फेर से
जो थे धन-सम्पन्न
जिनकी विजयपताका
उड़ती कर के नभ आच्छन्न

जिनकी विजय-गीतियाँ
गाते अरि-रमणी के वृन्द
हाय, आज उनके जीवन की
हुई सभी गति मन्द

[३४]

जिन सुदिनों ने तक्षशिला के
देखे वे आचार्य
कोविद, रणाग्रणी, सेनापति,
भूपति, विश्वविचार्य

उनकी ज्ञान-कहानी मंजुल,
उनके यश का गान
क्या वे दिन फिर सुना सकेंगे
उलट एक भी तान ?

[३५]

अब तो वे खँडहर रोते हैं
पिछले दिन कर याद
भग्न स्मृतियाँ सुबुक सुबुक कर
देती हैं संवाद

काल बली की दीमक ने
खा डाला वह तरु-प्रान्त
पत्ते झड़ झड़कर पुकारते
नाटक देख दुखान्त

[३६]

भग्न शेष वे तक्षशिला की
ठठरी हैं अवशेष
काल-सर्पिणी ने डस
चूसा जिसका वह परिवेश

वे रणवीर काल से
लडने में थे जो बलवान
हन्त, क्या न वे देख सकेंगे
अपना बिगड़ा मान

[३७]

वे प्रासाद, मंजु-सी कुंजे,
मन्दिर, घर उद्यान
छविमय कलश, कुसुम,
सुर, वैभव, सरस समीर विहान

आज गड़े हैं वे लज्जा से
मानो सब भूभाग
भोग रही वैधव्य स्त्री-सी
धरा विहीन सुहाग

[३८]

अपने वैभव-हीन
दिनों को सजते निरख समाज
वे मुद्रा, भूषण मुँह
ढँक कर रज से रखते लाज

गड़ी जा रही है दिन
दूनी पृथ्वी पृथ्वी-बीच
अन्धकार में जीवन-
घड़ियाँ रोती हैं मुँह मीच

[३६]

दुख में वैभव-भरी कहानी
है धीरज उपचार
करे छलकती आँसू
झड़ियों में यह कुछ उपकार

हे भग्नावशेष, इस कारण
गाई गाथा आज
दुःख-घटा में जिससे
चमके टुक बिजली का साज